गायत्रीरहस्य

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी०ए० ऑनर्स, एम०ए०

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक :

दो शब्द

वेद धर्म का मूल है अखिल विश्व की ख्याती ।
वेद की सत्य भाषा पाखण्डियों को नहीं भाती ।।
वेद विश्व के पुस्तकालय में है सबसे प्राचीन ।
हर मन्त्र में भरे पड़े मानव निर्माण के शब्द नवीन ।।

—लालचन्द चौहान

जैसे नदियों में गंगा, वृक्षों में पीपल, दही में मक्खन और पशुओं में गाय सर्वश्रेष्ठ है। उसी प्रकार वेदों को भी संसार के विभिन्न विद्वानों एवं गिन्नीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स ने संसार के पुस्तकालय में प्राचीनतम एवं सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ घोषित किया है। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकारियों ने विवेकपूर्ण निर्णय लेकर चारों वेदों को भारत से मंगवा कर अपने पुस्तकालय में मानव सभ्यता के प्रथम ज्ञान के रूप में मान्यता के साथ सुसज्जित कराया है। यहाँ तक कि इसी संस्था ने वेद को संसार की सर्वश्रेष्ठ ज्ञान की पुस्तक भी स्वीकार कर लिया है। यह हमारे लिये बड़े गौरव का विषय है। इसके अतिरिक्त अमेरीकी संसद में भी गायत्री मंत्र का उच्चारण और शांति पाठ की ध्वनि सारे संसार को सुनाई दी है क्योंकि ये दोनों मंत्र सारे संसार के कल्याण की कामना, शांति व समृद्धि के सूचक हैं और इन में किसी सम्प्रदाय का वर्णन नहीं। जैसे महर्षि दयानंद ने उद्घोष दिया था—

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, जो इस पर खरा उतरे ले लो। शेष सब छोड़ दो। व्यर्थ के व्यामोह (अज्ञान) में न पड़ो।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने वेदों के 20416 विभिन्न मंत्रों के अध्ययन एवं अनुशीलन के पश्चात् अत्यंत महत्वपूर्ण मंत्रों जैसे गायत्री रहस्य, जीने की कला, भद्रप्राप्ति, कल्याणकारी मार्ग, मधुरवाणी आदि शीर्षकों के अन्तर्गत उनका सारामृत अत्यंत सरल व सुगम भाषा में प्रस्तुत किया है ताकि एक साधारण पाठक भी इन्हें सरलता से समझ सके क्योंकि वेद प्रभु प्रदत्त वाणी है। इसके मंत्रों के यौगिक अर्थ है जिनको साधारण पाठक आसानी से नहीं समझ सकता है। इसके अतिरिक्त वेद जैसे विशालकाय ग्रंथ के अध्ययन का आज के व्यक्ति के पास समय भी नहीं है। 'मानव बन' शीर्षक के अन्तर्गत

एक वेद सूक्ति का विशद विवेचन भी किया गया है। इसके अध्ययन से पाठकों को पता चल जायेगा कि सच्चे अर्थों में मानव किसको कहते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री लालचंद चौहान जी, सत्यपाल मोदी जी, रोशन लाल अग्रवाल जी, नरेश बंसल जी, जय किशन जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी। श्री लालचंद चौहान जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि इनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तनान रूप में संयोजन न हो पाता। जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका मैं कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से मैंने संदर्भ उद्धृत किये हैं।

मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ एवं अपूर्ण है। अतः कोई भी त्रुटि रह गई हो तो पाठकों से क्षमा चाहूँगा। त्रुटि को लिख कर निम्नलिखित पते पर भेजें ताकि भविष्य में उसे सुधारा जा सके।

धर्म पाल कपूर

दिनांक : 1.1.2017

(धर्मपाल कपूर)
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

निवेदन

गायत्रीरहस्य पुस्तक द्वारा श्री धर्मपाल कपूर जी का गायत्री के रहस्य अर्थात् गायत्री मन्त्र की सर्वमान्यता के ऊपर प्रकाश डाला है । वेदों के मन्त्रों में गायत्री मन्त्र को महामंत्र की संज्ञा दी गई है । गायत्री मन्त्र में तीन अक्षर हैं– गा+य+त्री= गायत्री । गायत्री मन्त्र से ईश्वर के गुणों का गुणगान करो । यह 'गा' अक्षर का अभिप्राय है । 'य' – यज्ञ करो । यज्ञ से वायुमण्डल शुद्ध होता है, वायु मण्डल शुद्ध रहने से प्राणीमात्र को शुद्ध वायु मिलती है, शुद्धता से नीरोगता रहती है । 'त्री' – तीन, मन, वचन, कर्म से किसी का बुरा न करो ।

गायत्री वेदों का सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है, इसको गुरु मन्त्र भी कहते हैं । गायत्री मन्त्र एक ऐसा मन्त्र है जिसमें ईश्वर से सर्वश्रेष्ठ वस्तु की मांग की गई हैं वह है, सद्बुद्धि । यदि ईश्वर से सद्बुद्धि मिल जाती है तो मनुष्य सद्बुद्धि से शुभ कार्य ही करेगा और शुभ कर्मों से ही मनुष्य का कल्याण होता है । मनुष्य बुद्धि से ही सारे काम करता है । यदि मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाये तो मनुष्य के जीवन में दुःखों का अम्बार खड़ा हो जाता है अर्थात् जीवन, जीवन नहीं रहता, नरक बन जाता है । इस नरकी जीवन से ऊपर उठने के लिये हमें सद्बुद्धि चाहिये, बिना बुद्धि से काम लिये और बुद्धि को सत्कर्मों में लगाये बिना मनुष्य कभी तरक्की नहीं कर सकता । न ही पुण्य कर्म कर सकता है ।

गायत्री मन्त्र एक ऐसा मन्त्र है जिसमें ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना तीनों के महत्त्व को समझाया गया है । स्तुति का अर्थ है– ईश्वर के गुणों का गुणगान करना । ईश्वर के गुण क्या हैं? सब समर्थों में समर्थ, सच्चिदानंद स्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त स्वभाव वाला, कृपा सागर, ठीक-ठीक न्याय करने वाला, जन्ममरणादि क्लेश रहित, निराकार सबके घट-घट का जानने वाला, सबका धर्त्ता, विश्व का पोषण करने वाला, सर्वव्यापक, सर्व सकल ऐश्वर्य युक्त आदि जो प्राप्ति की कामना करने योग्य, उस ईश्वर के गुणों का चिन्तन, गान करना ही स्तुति है । उपासना का अर्थ है– ईश्वर में ध्यान लगाना, मन को एकाग्र करके प्रभु में लगाना । प्रार्थना का अर्थ है– ईश्वर से कुछ मांगना । ईश्वर से मांगने वाली वस्तु क्या है? सद्बुद्धि, यदि सद्बुद्धि प्राप्त हो जाती है तो ईश्वर से अन्य कोई वस्तु मांगने की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि सभी कार्य बुद्धि से सोच विचार कर ही किये जाते हैं । बिना बुद्धि से विचारे तो अधर्म कार्यों में ही मनुष्य संलिप्त हो

जाता है। कहावत भी है— बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय।

ईश्वर से प्रार्थना करने का क्या प्रयोजन है? वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों को दुराचार और अधर्म मार्ग से हटा कर श्रेष्ठाचार सत्यमार्ग में चलावें। गायत्री मन्त्र का भाव क्या है?

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रयोदयात्।।

यजु. 36-3

भावार्थ – ओ३म् –अकार, उकार और मकार के योग से "ओ३म्" यह अक्षर सिद्ध है, यह परमेश्वर का सब नामों में उत्तम नाम है। जिसमें सब नामों के अर्थ आ जाते हैं। जैसा पिता पुत्र का सम्बन्ध है। वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है। इस नाम से ईश्वर के अनेक नामों का बोध होता है। जैसे –

अकार से (विराट्) जो विविध जगत् का प्रकाश करने वाला है। (अग्नि)– जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा हैं (विश्वः) जिसमें सब जगत् प्रवेश कर रहा है। उकार से (हिरण्यगर्भः) जिसके गर्भ में प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोक हैं, और जो प्रकाश करने हारे सूर्यादि लोकों का अधिष्ठान हैं इससे ईश्वर को हिरण्यगर्भः कहते हैं। हिरण्य का नाम और ज्योति, अमृत और कीर्ति है। (वायुः) जो अनन्त बल वाला सब जगत् का धारण करने वाला है। (तैजसः) जो प्रकाशस्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है। मकार से (ईश्वर) जो सब जगत् का उत्पादक, सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी है। (आदित्यः) जो वायुरहित है। (प्राज्ञ) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है। यह संक्षिप्त में ओंकार का अर्थ महर्षि दयानन्द द्वारा किया गया है अब महाव्याहृतियों का अर्थ जो महर्षि द्वारा किया गया है, उसका संक्षिप्त में वर्णन करते हैं।

(भूरिति वः प्राणः) जो सब जगत् का जीने का हेतु, और जो प्राण से भी प्यारा है, इससे ईश्वर का नाम भू है।

(भुवरित्मवान्ः) जो मुक्ति की इच्छा करने वालों, मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है, इसलिए परमेश्वर का नाम भुवः है।

(स्वरितिव्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके, सब नियम में रखता है सब में ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है, इससे ईश्वर का नाम स्वः है। संक्षिप्त में गायत्री मन्त्र का अर्थ–

(सवितु) जो सब जगत् का उत्पन्न करने हारा, और ऐश्वर्य का देने वाला है (देवस्य) जो सबके आत्माओं का प्रकाश करने वाला और सब सुखों का दाता है, उसका (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने योग्य, (भर्गः) शुद्ध विज्ञान स्वरूप है, (तत्) उसकी (धीमहि) हम लोग सदा प्रेम भक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें। किस प्रयोजन के लिये? कि (यः) जो उपरोक्त सविता देव परमेश्वर है, वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपया बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करें। उसको छोड़ कर हम दूसरे किसी का ध्यान न करें, क्योंकि उसके तुल्य और न अधिक है न कभी हुआ और न कभी होगा। इससे परमेश्वर की ही उपासना कर, कि जिससे कर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्य देह का रूप वृक्ष के चार फल हैं, वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वथा सब मनुष्यों को प्राप्त हो।

कई विद्वानों को मैंने कहते सुना है कि गायत्री मन्त्र का जाप करो सब कष्ट मिट जायेंगे और विद्यार्थियों को कहते सुना कि गायत्री मन्त्र का जाप करो परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो जाओगे। देखिए! गायत्री मन्त्र के केवल जाप करने से न तो कष्ट मिटेंगे और न ही अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होंगे। गायत्री मन्त्र के जपने से क्या लाभ होगा? उसको जान लेने पर ही कष्टों का निवारण होगा और अच्छे अंक भी आएंगें इसमें कोई दो राय नहीं है। गायत्री मन्त्र के द्वारा ईश्वर से सद्बुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना की जाती हैं जब ईश्वर से सच्चे दिल से हम प्रार्थना फल प्राप्ति की भावना को त्याग कर करेंगे तो ईश्वर अवश्य हमारी प्रार्थना को स्वीकार करता है। ईश्वर द्वारा सद्बुद्धि की प्राप्ति होने पर मनुष्य दुष्कर्म नहीं करेगा और जब दुष्कर्मों को छोड़ देगा तो दुःख आयेगा ही नहीं, दुःख तो दुष्कर्मों का ही फल होता हैं जो कर्म पहले कर चुके हें, वे चाहे पुण्य कर्म हों या पाप कर्म, उनका फल तो भोगना ही पड़ेगा। यह ईश्वर की न्याय व्यवस्था है, वह किसी के भी पाप कर्मों को माफ नहीं करता, चाहे कोई उपासक हो या ईश्वर को न मानने वाला। इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता।

दूसरे गायत्री मन्त्र का विद्यार्थियों द्वारा जप करने से क्या लाभ होता है? विद्यार्थी द्वारा गायत्री मन्त्र का जाप करने से जो पढ़ा है, वह स्मरण रहता है और जो पढ़ा हुआ स्मरण रहेगा तो अच्छे अंक तो आएंगें ही, उसके साथ मेहनत से पाठ का अध्ययन तो करना ही पड़ेगा। खाली गायत्री मन्त्र के जाप

से कुछ नहीं होने वाला। पढ़ा हुआ ही स्मरण रहेगा। इसी प्रकार बिना परिश्रम से धर्मानुसार धन कमाए बिना धन की प्राप्ति भी केवल गायत्री मन्त्र के जाप से नहीं होगी । जैसे एक उर्दू शायर के शब्दों में –

किसी के चार दिन की ज़िन्दगी सौ काम आती है।
किसी के सौ वर्ष की ज़िन्दगी वैसे ही चली जाती है।।

वह ईश्वर कैसा है जिसकी गायत्री मन्त्र में महिमा का वर्णन है। वह परमेश्वर बिना हाथ पैर के समस्त ब्रह्माण्ड में तीव्र गति से विचरण करता है। कान से रहित होकर भी (समस्त ब्रह्माण्ड) वृत्तान्त को सुन लेता है, जान लेता है। आँख के बग़ैर भी सब कुछ देख रहा है। वह कण-कण में व्याप्त है, उसकी व्यापकता के बग़ैर कोई स्थान नहीं है।

गायत्री मन्त्र के अनुसार मनुष्य को शुभ कर्म करते हुए अपने जीवन को सुखमय बनाना चाहिये। गायत्री को गायत्री माता भी कहते हैं। गायत्री मन्त्र के रहस्य को जानने और उसको अपने जीवन में क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। शुद्ध भावना से गायत्री मन्त्र का जाप करने से बहुत लाभ होता है।

श्री धर्मपल कपूर जी ने इस गायत्रीरहस्य पुस्तक का लेखन कार्य बड़ी मेहनत और स्वाध्याय करके अनेक महापुरुषों की पुस्तकों से महत्वपूर्ण ज्ञानवर्धक पंक्तियों को अपनी पुस्तक में स्थान दिया है। मेरा विश्वास है कि पाठकों के लिए यह पुस्तक बड़ी ही ज्ञानवर्धक सिद्ध होगी। श्री धर्मपाल कपूर जी निःस्वार्थ भाव से जन कल्याणार्थ धार्मिक पुस्तकों का निःशुल्क वितरण करते हैं। यह उनका बड़ा ही परोपकारी कार्य है। यह कार्य ऐसा है जैसे मोतियों को चुन-चुन कर एक धागे में पिरो दिया हो अर्थात् विभिन्न विद्वानों की ज्ञानवर्धक बातों का चयन करके संकलित किया है। यह अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य है। ईश्वर इन्हें लम्बी आयु एवं स्वास्थ्य प्रदान करें ताकि यह जनता का ज्ञानवर्धन करते रहें।

लाल चन्द चौहान
से.नि. राज्य विकास अधिकारी,
कोठी नं. 591, सैक्टर 12,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2563079
मोबाइल : 9814881501

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	गायत्रीरहस्य	1
2.	जीने की कला	9
3.	भद्रप्राप्ति	22
4.	मानव बन	30
5.	कल्याणकारी मार्ग	40
6.	हम सदा प्रसन्न रहें	46
7.	मधुर वाणी	54
8.	उपास्यदेव	64
9.	यज्ञसंस्कृति	69
10.	अभिमान	81

1. गायत्रीरहस्य

करो गायत्री जाप, मनवा धुल जाएगा ।
मारो जोर से थाप, फाटक खुल जाएगा ।।
प्रातः सायं ध्यान लगाओ, मनमंदिर में उसे बिठाओ ।
मन में करो जाप, मनवा धुल जाएगा ।।
राम, श्याम ने उसको ध्याया, वेद पढ़ कर कर्त्तव्य निभाया ।
वेद पढ़ कर देखो आप, मनवा धुल जाएगा ।।
आनंद स्वामी को आनन्द आया, प्रभु आश्रित ने प्रभु को पाया ।
श्वास-श्वास में नाप, मनवा धुल जायेगा ।।
सौ वर्ष तक जीना चाहो, अमृतरस तुम पीना चाहो ।
गायत्री है माँ-बाप, मनवा धुल जायेगा ।।
आशानंद जब कष्ट सतावे, गायत्री माँ की गोद में आवे ।
करता क्यों विलाप, मनवा धुल जायेगा ।
बड़े भाग्य से नरतन पाया, मोहमाया में यह भरमाया ।
रखो इसे बेदाग़, मनवा धुल जाएगा ।।
करलो गायत्री जाप, मनवा धुल जायेगा ।
मारो जोर से थाप फाटक खुल जायेगा ।।

संसार एक सुन्दर गीत है, प्रत्येक वस्तु यहाँ पर गाती है । आकाश की आँखों में तारे गाते हैं । उद्यानों की झीलों में फूल गाते हैं । सागर के सीने पर तरंगे गाती है। जीवन के किनारे पर मृत्यु गाती है। मृत्यु के उस पार नव-जीवन है । हर वस्तु यहाँ पर गा रही है । फिर मानव ही पत्थर बनकर क्यों बैठा रहे? क्यों न वह प्रसन्नता से झूम उठे? क्यों न उसके ठहाकों से पृथ्वी एवं आकाश गूँज उठे? ऐसा करने के लिए इस संसार में एक ही रास्ता है वह है गायत्रीमंत्र का अनुष्ठान । क्योंकि जैसे फूलों का सार मधु है, दूध का सार घी है, यज्ञ का सार सुगंधि है, मानव जीवन का सार धर्म है, उसी प्रकार सब वेदों का सार गायत्रीमंत्र है । गायत्री मन्त्र में तीन अक्षर हैं गा+य+त्री = गायत्री ।

'गा' का अभिप्राय है– गायत्री मन्त्र से ईश्वर के गुणों का गुणगान करो। 'य' का अभिप्राय है यज्ञ करो, दुर्गन्ध का नाश कर वायुमण्डल को शुद्ध करो। 'त्री' का अभिप्राय है, तीन–मन, वचन, कर्म से किसी का बुरा न करो। ईश्वर से सदा गायत्री मन्त्र के जाप द्वारा सद्बुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना करो। सद्बुद्धि के बिना समय का सदुपयोग नहीं किया जा सकता। इसीलिये महर्षि दयानन्द ने गायत्री मन्त्र को महामंत्र की संज्ञा दी है। गायत्री मन्त्र के जाप से आत्मा पवित्र एवं शुद्ध होती है।

वस्तुतः यह सद्बुद्धि प्रदान करता है। चारों वेदों में केवल यही एक मंत्र है जिसमें परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का वर्णन संसार के सारे व्यक्तियों के लिए किया गया है। अतः इसको वेदों का सर्वश्रेष्ठ मंत्र अथवा महामन्त्र कहा जाता है। विभिन्न विद्वानों ने गायत्री मंत्र की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं–

जैसे महर्षि दयानंद जी लिखते हैं–

गायत्री वेदों का सर्वश्रेष्ठ मंत्र है। यही मूल मंत्र है। गुरुमंत्र है।

इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है–

गायत्री सद्बुद्धि देती है। परमात्मा से यदि कोई तत्व मेल कराता है तो वह है सद्बुद्धि। जिसकी बुद्धि ठीक हो जाये उसके सभी कार्य ठीक होते हैं।

मैं गायत्री मंत्र को आत्म-समर्पण का मंत्र समझता हूँ। जिस प्रकार एक युवती अच्छी प्रकार जानते हुए विवाह मंडप में पवित्र अग्नि के समक्ष बैठी पूर्ण निश्चय के साथ अपने पति देव के आगे स्वयं को समर्पण करके उसे अपना वर स्वीकार करती है। उसी प्रकार प्रस्तुत मंत्र का जाप करने वाला स्वयं को प्यारे प्रभु के चरणों में समर्पित करता है।

नाम : इसको गायत्री मंत्र इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इसकी रचना गायत्री नामक छंद से हुई है। परन्तु छंद शास्त्र के अनुसार गायत्री में 24 अक्षर होते हैं परन्तु इस मंत्र में 23 अक्षर हैं। इसलिए इसको निचृद गायत्री मंत्र कहना चाहिए न कि गायत्रीमंत्र। इसको गुरुमंत्र या महामंत्र इसलिए कहा जाता है कि जब शिष्य विद्याध्ययन के लिए सर्वप्रथम गुरु के पास जाता है तो गुरु अपने शिष्य को इसकी ही शिक्षा देता है। प्रस्तुत मंत्र वेदों का अलंकार है इसलिए संध्या का आरंभ इसी मंत्र से होता है।

गायत्री मंत्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।– ऋग्वेद 3.62.10,
यजुर्वेद 3.35, 22.9, 30.2, 36.3, सामवेद 1462

शब्दार्थ–

1. ओ३म् = यह ओंकार प्रभु का मुख्य नाम है । इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक ओ३म् समुदाय हुआ है । इस नाम में प्रभु के अनेक नाम आते हैं ।
2. भूः = प्राणप्रिय (सत्), सब जगत् के जीवनाधार । स्वयंभू ।
3. भुवः = दुःखनाशक (चित्) सर्वज्ञ ।
4. स्वः = आनंददायक (आनंद) नानाविध जगत् में व्यापक होकर सबको धारण करने वाले ।
5. तत् = उस प्रभु को ।
6. सवितः = सकल जगत् के उत्पादक सर्वैश्वर्यप्रदाता, सारे संसार के शासक, सब शुभ प्रेरणा देने वाले ।
7. वरेण्यं = ग्रहण करने योग्य, अतिश्रेष्ठ
8. भर्गो = शुद्ध स्वरूप, पवित्रकारक ।
9. देवस्य = प्रभु के, सर्वसुखदाता, दिव्यगुणयुक्त सारे संसार के शासक ।
10. धीमहि = हम धारण एवं ध्यान करें ।
11. धियो = बुद्धियों में ।
12. यो = जो प्रभु ।
13. नः = हमारी ।
14. प्रचोदयात् = श्रेष्ठमार्ग की ओर प्रेरित कीजिए ।

गद्यानुवाद–

हे प्रभु ! आप सर्वरक्षक, प्राणाधार, सुखस्वरूप, दुःखनाशक और सतचित् आनंदस्वरूप है । आप ही सृष्टि के उत्पादक, पालक, संहारक, वेदज्ञानदाता एवं कर्मफल दाता हैं । हम आपके प्रेरणादायक, शुद्धस्वरूप वरणीय, परमपवित्र, दिव्यस्वरूप का हृदय मन्दिर में ध्यान धरते हैं । आप कृपया हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठमार्ग की ओर प्रेरित कीजिये ।

पद्यानुवाद–

तुने हमें उत्पन्न किया पालन कर रहा है तू ।
तुझसे ही पाते प्राण हम दुःखियों के कष्ट हरता है तू ।।
तेरा महान् तेज है छाया हुआ सभी स्थान ।
सृष्टि की वस्तु-वस्तु में तू हो रहा है विद्यमान ।।
तेरा ही धरते ध्यान हम मांगते तेरी दया ।
ईश्वर हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग पर चला ।।

वस्तुतः गायत्री मंत्र के ऋषि विश्वामित्र और देवता सविता हैं । गायत्री मंत्र जप का नहीं, अपितु ध्यान, मनन व नमन का मंत्र है । इसका चिन्तन, परिस्थितियों के अनुकूल करने के लिए ऋषियों ने अनेकों ढंग बतलाये हैं । अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि गायत्री मंत्र को वेदों का सर्वश्रेष्ठ मंत्र और सार क्यों कहा जाता है । क्योंकि वेदों में केवल यही एक मंत्र है जिसमें ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना तीनों ही का दिग्गदर्शन होता है ।

स्तुति का अर्थ है ईश्वर के गुणों का चिन्तन करना ताकि उसमें मन लगा रहे । उपासना का अर्थ है ईश्वर में देर तक मन लगाकर ध्यान लगाना । प्रार्थना का अर्थ ईश्वर से उसके मिलन की याचना करना ताकि अभिमान न रहे । क्योंकि स्तुति से प्रेम उत्पन्न होता है, उपासना से भय का नाश होता है और प्रार्थना से अभिमान का नाश होता है । चारों वेदों में गायत्री मंत्र एक ऐसा मंत्र है जिसमें ईश्वर की स्तुति, उपासना और प्रार्थना की गई है जैसे भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं में ईश्वर की स्तुति, भर्गो देवस्य धीमहि में ईश्वर की उपासना और धियो यो नः प्रयोदयात् में प्रार्थना की गई है । इस प्रकार भक्ति के तीनों अंगों के लिए चारों वेदों में अकेले ही यह एकमात्र मंत्र है । इसी कारण इसको वेदों का सार कहा जाता है ।

ओ३म् : यद्यपि ओ३म् शब्द मंत्र में नहीं आया । ऋषियों ने विधान बनाया कि वेद मंत्रों के उच्चारण करते समय उनके आरंभ में ओ३म् लगाकर उनका उच्चारण करना चाहिए । वेद के सब मंत्रों का अंतिम तात्पर्य परमात्मा है । अतः ऋषियों के अनुसार परमात्मा का वाचक ओ३म् स्वयं एक मंत्र है । ओ३म् प्यारे प्रभु का मुख्य, सर्वोत्तम एवं निज नाम है और जितने भी ईश्वर के नाम हैं, वे सब के सब गुणों के कारण रखे गए हैं ।

भूः भुवः स्वः–

इन तीनों शब्दों के विषय में उपनिषद् में कहा गया है ।

यह सब शास्त्रों और वेद के मंत्रों का सार है जो कि प्रजापति ने निकालकर सामने रख दिया है।

ये तीनों ईश्वर की प्रशंसा के सूचक हैं। ये प्रकट करते हैं कि ईश्वर क्या है? ब्राह्मणग्रंथों में इनको क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का सार बताया गया है। इन तीनों शब्दों को महाव्याहृतियाँ भी कहा गया है अर्थात् इनके विशेष अर्थ हैं। गायत्री मंत्र वेदों में छः बार आया है, परन्तु ये व्याहृतियाँ केवल यजुर्वेद के 36वें अध्याय के तीसरे मंत्र में आई हैं। व्याहृति का शाब्दिक अर्थ है वि+आ+हृति अर्थात् विशेषतया+संपूर्णतया+ मन्थन अर्थात् व्याहरण, विलोडन और मन्थन से जिसकी प्राप्ति हो वही व्याहृति है। कहने का भाव यह है कि चारों ओर से इकट्ठा करके ले आना। सारे संसार को एकत्रित करके अपने मन में जाना होगा। जैसे – जब दही का विलोड़न किया जाता है। इसके बाद दही में से मक्खन निकलता है। वह दहीं की व्याहृति है। वस्तुतः भूः भुवः स्वः चतुष्काण्ड वेद की व्याहृति है। यही वेद का मक्खन, घी एवं प्रतिपाद्य है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विद्वानों ने इसके विभिन्न अर्थ किए हैं। मुख्यतः इनके प्राणस्वरूप, रक्षक एवं सुखस्वरूप अर्थ किए जाते हैं। परन्तु इनके सूक्ष्म अर्थ ये हैं :–

1. सत्चित् आनंद, 2. बीज, वृक्ष और फल, 3. अस्ति, भवति और प्रीति, 4. प्राण, अपान और व्यान, 5. हिन्दी में है, होना और सुख की ओर बढ़ना, 6. अंग्रज़ी में Being becoming and Bliss.

1. भूः का अर्थ है : प्राणप्रिय, प्राणाधार–प्राणों को देने वाला इसका लाभ तभी होगा यदि हम किसी असहाय के प्राणाधार बनें और किसी को हानि न पहुँचाएं। इसका भाव है–सत्।

2. भुवः का अर्थ है : चित् एवं दुःखनाशक है। वस्तुतः दुःख बहुत गंभीर शब्द है। हम चाहते हैं कि दुःख हमारे पास न आए। इसलिए हमें अपने जीवन में ईर्ष्या एवं घृणा को निकालना होगा।

इस प्रकार जब तक मन के अंदर ईर्ष्या-द्वेष एवं घृणा है तब तक गायत्री मंत्र के जाप का क्या लाभ। इससे कुछ नहीं होगा। गायत्री मंत्र की उपासना यदि करनी है तो मन से ईर्ष्या द्वेष एवं घृणा को दूर निकाल दो। फिर देखो आनंद मिलता है या नहीं। स्वः का अर्थ है आनन्द जो कभी समाप्त नहीं

होता । आनन्द केवल आत्मा का विषय है और सुख शरीर का । आनंद केवल प्रभु का पर्यायवाची है और किसी भी सांसारिक पदार्थ में नहीं है ।

(1) भूः सत् (2) भवः चित् (3) स्वः आनंद

तत्सवितुर्वरेण्यं : इसमें एक शब्द है सविता । सविता परमात्मा की वह शक्ति है जो सृष्टि-निर्माण में प्रेरणा देती है । शास्त्रों में इसके अनेक अर्थ हैं—

(1) उत्पन्न करने वाला (2) जगाने वाला (3) गर्भ से मुक्ति दिलाने वाला (4) प्रकट करने वाला (5) प्रकट हुए का विनाश करने वाला ।

अतः सविता ईश्वर की वह महान् शक्ति है जिससे वह सृष्टि-सृजन एवं व्यक्ति से बात करता है । अतः, ''सत्यार्थप्रकाश'' के सातवें समुल्लास में महर्षि दयानंद लिखते हैं—

जब आत्मा, मन और इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरंभ करता है, उस समय जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है । उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका, लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनंदोत्साह उठता है । वह जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्मा की ओर से है ।

इस प्रकार परमात्मा भीतर से प्रेरणा करता है । वह ध्वनि प्रत्येक के अन्तःकरण से उठती है जो भी सुनना चाहे वह उसको सुन सकता है, किन्तु अंदर की ध्वनि को सुनने के लिए पहले बाहर की ध्वनि को बंद करना पड़ता है ।

इसमें दूसरा शब्द है—वरेण्यम् इसका अर्थ है ग्रहण करने योग्य । हमें इस प्रभु की शक्ति को आचरण में लाना चाहिए तभी लाभ हो सकता है ।

भर्गो देवस्य धीमहि : भर्ग शब्द भृज धातु से बना है । इसके "गोपथ ब्राह्मण" में दस अर्थ दिये हैं । वे ये हैं- सबसे बड़ा, भुना हुआ, पका हुआ, पृथ्वी, अग्नि, वस्तु, वसंत आदि । इस प्रकार यह मंत्र जीवनदाता है ।

ऐसी भक्ति हो तो फिर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी मिलते हैं । केवल कीर्त्तन करने, नाम जपने, माला फेरने या संन्यास धारण करके जंगल में चले जाने का नाम भक्ति नहीं । भक्ति वह है जिससे मनुष्य संसार के सारे कार्य करते हुए अपने प्रभु को न भूले और अनासक्त भाव से जीवन व्यतीत करे ।

तू **'वरेण्यम्'** अर्थात् वरने के योग्य है और पूजनीय भी है । तेरी पूजा ही वास्तविक पूजा है । मैंने तुझे प्राप्त कर लिया है और स्वयं को तेरे अर्पण कर दिया है । अब मेरी जीवन नौका को चाहे तार दो अथवा डूबो दो । यह तेरी इच्छा पर आधारित है । इसको नारद, भक्तिसूत्र में "अनन्यभक्ति" गीता में "शरणागति" योगदर्शन में "ईश्वरप्रणिधान" और महर्षि दयानंद ने "प्रेमाभक्ति" नाम से पुकारा है ।

अब प्रस्तुत प्रसंग में एक **'देवस्य'** शब्द है । इसका अर्थ है-प्रभु के (आनंददायक) । देवताओं के पास जो कुछ है वह हमारे कल्याण के लिए है । वे देते हैं इसलिए देव हैं । ईश्वर सबसे अधिक देता है—इसलिए महादेव है । अतः मेरा भी यह कर्तव्य है कि मैं भी किसी को कुछ दूँ ।

प्रस्तुत मंत्र का अंतिम भाग— **"धियो यो नः प्रयोदयात्"** गोपथ ब्राह्मण में धी शब्द के अर्थ हैं—बुद्धि, कर्म, मेधा—इसका भाव यह है कि मेरी बुद्धि दूसरे के कल्याण में लगे । नः शब्द का अर्थ है हमारी । प्रस्तुत मंत्र में समष्टीगत प्रार्थना की गई है कि मैं अकेला नहीं अपितु सारा संसार अच्छा बने । हमारी बुद्धि ठीक हो ताकि हम शुभकर्म करें । प्रचोदयात् का अर्थ है-शुभ कर्मों में प्रेरित करना, लगाना । परमात्मा हमें शुभ कर्मों के लिए प्रेरित करे । मैं सदा निष्काम भाव से दूसरे का कल्याण करूँ जैसे कि परमात्मा करता है । क्योंकि वही हमारा सनातन माता-पिता है । बुद्धि शक्ति को समझने के लिए हम उसके मुख्यतः पांच अनुभाग कर सकते हैं ।

1. साधारण बुद्धि : यह सभी साधारण मनुष्यों में होती है । यह विभिन्न पशु-पक्षियों में भी विभिन्न स्तरों पर पाई जाती है । ऐसी बुद्धि केवल सामान्य ज्ञान से ही हमारा परिचय करा सकती है ।

2. धी बुद्धि : यह बुद्धि मानव को पशु पक्षियों से अलग करती है । क्योंकि ऐसी बुद्धि वाला व्यक्ति सत्य और असत्य का चिन्तन कर सकता है । वह भले-बुरे, पाप पुण्य तथा धर्म अधर्म की पहचान कर सकता है । न केवल पहचान कर सकता है बल्कि तदनुसार आचरण भी करता है । इसलिए यह शक्ति बुद्धि के विकास का दूसरा सोपान है ।

3. मेधा बुद्धि : यह बुद्धि के विकास का तीसरा सोपान है । मेधा बुद्धि वाला व्यक्ति अन्दर दृष्टि प्राप्त करने के प्रति संकल्पशील हो जाता है तथा उसे आत्मतत्त्व की पहचान होने लगती है । वह चिंतनशील होता है और सारी

इच्छाओं को त्यागने का सामर्थ्य उसके भीतर पैदा होना आरंभ हो जाता है। वह बाहर की यात्रा करता हुआ अन्तर यात्रा का पथिक बन जाता है। वह भौतिकता से धीरे धीरे उपराम होकर आध्यात्मिकता के रंग में रंग जाता है।

4. प्रज्ञा बुद्धि : यह मानो रूपान्तरित होने का टर्निंग प्वाइंट है। बुद्धि की यह स्थिति ही महत्वपूर्ण है तथा इस स्तर पर प्राप्त हुआ साधक इन्द्रियसंयम के द्वारा पूर्णतः अन्तर्यात्रा पर चल निकलता है। ऐसे व्यक्ति को कामनाएं पराभूत नहीं कर पाती उसकी स्थिति स्थितप्रज्ञ जैसी हो जाती है। श्रीकृष्ण जी ने प्रज्ञाबुद्धि प्राप्त व्यक्ति की चर्चा करते हुए गीता में कहा है–

> **जिसे किसी वस्तु के प्रति स्नेह नहीं, जो शुभ को प्राप्त करके प्रसन्न नहीं होता, अशुभ को प्राप्त करके अप्रसन्न नहीं होता, उसकी प्रज्ञा (बुद्धि) समझो दृढ़ता से स्थिर हो गई है।** –2.57

> **जैसे कछुआ अपने अंगों को सब ओर से सिकोड़ कर अपने खोल के अन्दर खींच लेता है, उसी प्रकार जब कोई पुरुष अपनी इन्द्रियों को खींच लेता है, तब समझो उसकी प्रज्ञा (बुद्धि) स्थिर हुई है।** –2.58

इसलिए इन सब इन्द्रियों को वश में करके "युक्त" होकर प्रभु के साथ जुड़कर "तत्पर" होकर उसी में बैठे, जिस व्यक्ति की इन्द्रियां उसके वश में है उसकी प्रज्ञा (बुद्धि) स्थिर हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रज्ञा को प्राप्त हुआ व्यक्ति पूर्णतया आत्मचेतना बन जाता है। वह अपने स्वरूप को पहचान लेता है। उसका कायाकल्प हो जाता है।

5. ऋतंभरा बुद्धि : यहाँ आकर व्यक्ति समाधि को प्राप्त होकर ब्रह्म साक्षात्कार करके जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। यही बुद्धि का चरम विकास है। गायत्री महामन्त्र बुद्धि के स्तर के विकास का यह मंत्र है। इसके माध्यम से व्यक्ति साधारण बुद्धि से विकास करके ऋतुंभरा बुद्धि तक पहुँच सकता है। इसलिए इस गायत्री मंत्र की बहुत महत्ता है। अतः आचार्य श्रीराम शर्मा गायत्री की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–

> **सद्‌बुद्धि का एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आधार गायत्री है। इस महामंत्र के एक-एक अक्षर में जो गूढ़ ज्ञान भरा हुआ है, वह इतना उज्ज्वल है कि उसके प्रकाश में अज्ञान का अंधकार नष्ट हो जाता है। इन 24 अक्षरों में ऐसा अद्‌भुत ज्ञान भण्डार भरा हुआ है। जिसमें दर्शन, धर्म, नीति, विज्ञान, शिक्षा, शिल्प आदि सभी पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं।**

किसी हिन्दी कवि ने कितना सुन्दर लिखा है–

फल मिलता है कर्म से, कर्म बनते हैं विचार से।
विचार बनते हैं बुद्धि से, बुद्धि मिलती है गायत्री से।।

एक शंका का उत्तर देना आवश्यक है वह यह कि गायत्री मंत्र के द्वारा बुद्धि कैसे ठीक बन सकती है? उत्तर यह है कि जैसे सितार का एक तार छेड़ने से सारा सितार बज उठता है उसी तरह जब गायत्री मंत्र का उच्चारण हृदय में होता है तो इसके चौबीस अक्षरों की ध्वनि से हृदय की तन्त्रियां बज उठती हैं। यह सारा कार्य अन्दर ही अन्दर एक वैज्ञानिक रीति से नीचे कुण्डलिनी मण्डल पर चोट करता है। उससे सुमेधा प्रज्ञा और प्रतिभा बुद्धि बनती है तथा प्रतिभा से ऋतंभरा बुद्धि बन जाती है। अतः सर मोनियर मिलियम्स लिखते हैं–

ईसाई धर्म ईसा के बिना कुछ नहीं, मुस्लिम धर्म, हज़रत मुहम्मद के बिना कुछ नहीं, बौद्ध धर्म महात्मा बुद्ध के बिना कुछ नहीं, यही पुरुष इसके ध्येय अथवा प्राण हैं परन्तु मुझे सत्य कहने में संकोच नहीं, यद्यपि मैं ईसाई हूँ कि हिन्दुओं का ध्येय मंत्र गायत्री है जो बिना किसी ऋषि, मुनि या महान् पुरुष के जीवित रह सकता है। हिन्दू धर्म का आधार किसी विशेष मनुष्य पर नहीं है। इस मंत्र के द्वारा सीधा परमेश्वर से हर एक मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

अंततः प्रभु से प्रार्थना है कि हम सब को शक्ति, भक्ति प्रदान करें, जिससे हम गायत्री महामंत्र में वर्णित उसके महान् संदेश को हृदयंगम कर सकें। उसके दिव्य संदेश को हम आचरण में ला सकें। जिससे हम स्वयं तर सके और संसार को सुपथ का संदेश दे सकें। यही वेद संदेश, उपनिषद्-उपदेश, शास्त्रसार और गीताज्ञान है।

2. जीने की कला

क्या बताऊँ कि मुझे क्या-क्या नज़र आता है ।
ज़र्रे ज़र्रे में तेरा जलवा नज़र आता है ।।
खिलीं जो कलियां नज़र आया तेरा मुस्कराना ।
गुलों में मुझको तेरा हँसना नज़र आता है ।।
उषा की सुरख़ी में सुरख़ी तेरे रुखसारों की ।
हर एक अदा में तू इठलाता नज़र आता है ।।

ओ३म् ईशा वास्यमिदꣳसर्वयत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ।।

—यजुर्वेद 40.1, ईशवास्योपनिषद्

इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है सभी कुछ ईश्वर से व्याप्त है। ईश्वर इस संसार के कण-कण में है। अतः प्रभुप्रदत्त प्रत्येक वस्तु का त्यागपूर्ण भोग करो और लालच मत करो क्योंकि यह धन किसी का भी नहीं है।

I. **ईशा वास्यमिंद सर्वयत्किञ्च जगत्यां जगत्—**

ईशा—राज्य करने वाला, जिसके अंदर शक्ति है जो अणु-अणु, परमाणु-परमाणु में फैला हुआ है। वास्य-रह रहा है, छाया हुआ है। यह पहली बात है जो मनुष्य बनाकर इस दुनियां में रहने के लिए योग्यता प्रदान करती है। आज का संसार प्यारे प्रभु को भूल गया है। यहाँ तक कि कई व्यक्ति तो उसके अस्तित्व को स्वीकार भी नहीं करते हैं क्योंकि वे कहते हैं कि वह नज़र नहीं आता। अरे भाई! उसको देखने के लिए दिव्य चक्षुओं की आवश्यकता है—वह चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं देता उस दिव्य दृष्टि के लिए अपने भीतर शक्ति पैदा कर।

वास्तव में, परमात्मा एक है, हिन्दू उसे ईश्वर, सिख उसे वाहेगुरु, ईसाई गॉड, मुसलमान अल्लाह, पारसी उसे अहुरमज्द, यहूदी जेहावो के नाम से पुकारते हैं। विभिन्न सम्प्रदायों के व्यक्ति चाहे उसे अपनी शिक्षा, संस्कार,

भावना, देशकाल आदि के प्रभाव के कारण उसे किसी भी नाम से पुकारें और किसी भी विधि-विधान से उसकी पूजा करें परन्तु संसार के सब व्यक्तियों का एक ही परमात्मा है। वस्तुतः प्रभु व्याख्यातीत है और प्रभु का बोध हो जाना ही प्रभुमय हो जाना है जो नितांत व्यक्तिगत अनुभूति है। प्रभुमय हो जाने के पश्चात् व्याख्याकार का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है अपितु शक्ति है। अतः यह अनुभूति का विषय है। वह गूंगे का गुड़ है जैसे गूंगा गुड़ खाकर उसके स्वाद को अनुभव तो कर सकता है परन्तु इसका स्वाद बता नहीं सकता। अतः अंग्रेज़ी में भी कितना सुन्दर लिखा है–

No One Can know thou,
No One Can define thou,
No One Can see thou,
But only true devotee can feel thou.

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि ऐसे सर्वव्यापक परमात्मा की कैसे अनुभूति की जाए। ऐसा करने के लिए मुख्य उपाय ये हैं :–

1. निष्कपटता – (Sincerity)
2. शुद्धता – (Purity)
3. विवेक – (Discrimination)
4. वैराग्य – (Dispassion)
5. आध्यात्मिक चिन्तन – (Spiritual Thinking)
6. धैर्य – (Preseverance)
7. आत्मसंयम – (Self Confidence)
8. निष्काम सेवा – (Selfless Service)
9. सम्पूर्ण समर्पण – (Complete Surrender)

सत्संग + श्रद्धा + भक्ति + प्रभुकृपा = भगवत्प्राप्ति।

स्वामी शिवानन्द जी अपनी पुस्तक "Sure Ways for Success in life and GOD realisation" में लिखते हैं–

You should live, work and breathe for GOD-realisation. You should dedicate your mind, body and soul at His alter. The whole world is His Leela only. There is nothing but GOD. Feel His indwelling presence, always and everywhere and enjoy the bless.

इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि धार्मिक ग्रंथों, इतिहास, शब्दकोष में से तीन शब्द–मां, महात्मा और परमात्मा को निकाल दिया जाए तो ये केवल कागजों के पुलन्दे बनकर रह जाएंगे क्योंकि मां की बचपन में, महात्मा की जवानी में और परमात्मा की बुढ़ापे में आवश्यकता होती है। यदि इसको जीवन में से निकाल दिया जाए तो जीवन व्यर्थ हो जाएगा।

यहाँ तक कि रूस में एक बड़ा प्रयोग हुआ तो साम्यवादियों ने परमात्मा को छीन लिया। फलतः वहां की जनता ने राजा को परमात्मा मानना स्वीकार कर लिया। गिरजाघर से ईसा की मूर्ति तो हट गई, परन्तु उनके स्थान पर क्रेमलिन के चौराहे पर लेनिन की लाश दवाइयाँ डालकर रख दी गई। लोग उसको फूल चढ़ाने लगे, 'चरणों में सिर रखने लगे और प्रार्थना करने लगे।

परमात्मा की सर्वव्यापकता के विषय में एक उर्दू शायर ने लिखा है–

हर इक बर्ग क़ायल है अज़मत का तेरी।
हर इक गुल में तुझको खिला देखते हैं।।
चमकता सितारों में है नूर तेरा।
महो-खुर में तेरी ज़िया देखते हैं।।

संसार के विभिन्न 40 वैज्ञानिकों ने– "The Evidence of God in Expanding Universal" नामक पुस्तक में स्वीकार किया है कि प्रभु की सत्ता और इसके समूचे जगत् के उत्पादक, रक्षक और विनाशक एक प्रभु ही हैं। इसी प्रकार "Seven Men of Science" नामक पुस्तक में लिखा है कोई शक्ति है जो पीछे छिपी हुई गति दे रही है।

तू अपनी आँखे उज्ज्वल कर! फूल की पंखुड़ी में देख! घास की पत्ती में देख! अणु-अणु में, परमाणु-परमाणु में उसको देख! अपनी खुली आँखों से

उसकी शक्तियां देख ! उसकी कारीगरी देख ! हिमाच्छादित पर्वतों की चोटियों पर खेलते हुए सूर्य की रश्मियों को देख ! कल-कल करते सागर की लहरों को देख ! इस समग्र अद्वितीय एवं दिव्य प्राकृतिक सौंदर्य को देख, ओ भोले मानव ! यह समस्त सौंदर्य उसने तेरे लिए ही बनाया है ।

देख ! भोले मानव देख ! इस रंग बिरंगी भूमि को देख ! कहीं बेलबूटे हैं, कहीं फूलों की क्यारियां हैं, कहीं फलदार वृक्ष झूम रहे हैं । इन सबको किसने बनाया ? खेत तो कृषक ने सजाया परन्तु वन किसने सजाया ? इस संपूर्ण विश्व का नियंता एवं संचालक कौन है ? यह वही परमपिता परमात्मा है जिसकी शक्ति की झलक हमें इस संसार में दृष्टिगोचर होती है ।

सूर्य अपनी अद्वितीय उज्ज्वल किरणों द्वारा दिन को सुशोभित कर रहा है तो जगमगाते तारे भी रात में, चन्द्रमा अपनी शीतल एवं निर्मल किरणों के अमृत रस की वर्षा कर रहा है । जरा बसंत ऋतु में पृथ्वी की शोभा देखें, वनस्पति किस प्रकार रंग बिरंगे आश्चर्यजनक दृश्य प्रस्तुत कर रही है । सावन के महीने में काली घटाएं, बादलों का घनघोर गर्जन, दादुर, मोर, पपीहे का शोर और बिजली की चमक एक वियोगी हृदय पर क्या प्रभाव कर रही है । सुन्दर चेहरों का देखते देखते, आँखों से ओझल हो जाना, आवागमन का चक्कर सर्वस्व उस प्रभु की अनुपम कारीगरी का नमूना प्रस्तुत कर रहे हैं । जिसे देख देख कर परमात्मा की कारीगरी पर न्यौछावर होना पड़ेगा । अतः परमेश्वर प्रकृति के विभिन्न रूपों में नज़र आता है परन्तु हमारा यह दारुण दुर्भाग्य है कि हम उसे पहचानते नहीं । एक कवि के शब्दों में—

है कहीं लाखों करोड़ों कोश में जल ही भरा,
है करोड़ों मील में, फैली कहीं सूखी धरा,
बह रही नदियाँ कहीं हैं, झर रहे झरनें कहीं,
किस जगह उसकी हमें महिमा दिखती है नहीं,

है कहीं दूर तक फैले लहलहाते घने वन,
हैं कहीं शोभते रंग-बिरंगे पुष्पों के उपवन,
गगन में असंख्य नक्षत्र टिमटिमाते हैं कहीं,
क्या सूर्य-चन्द्र सत्ता उसकी दिखाते हैं नहीं ।

संसार की अद्भुत रचना देखकर कौन कह सकता है कि सब अकस्मात् हो रहा है । इसके मूल में एक चैतन्य शक्ति कार्य कर रही है उसी का नाम परमात्मा है । अतः एडिसन ने सत्य ही लिखा है–

बहुत से मनुष्यों को सृष्टिकर्ता के विषय में अणुमात्र ज्ञान है । वे लोग यदि प्रकृति और प्राकृतिक नियमों में उसके अद्भुत कार्यों का अनुशीलन करेंगे तो उन्हें महान सृष्टा का अधिक विस्तृत ज्ञान हो सकेगा । वस्तुतः मैं रसायनविज्ञान द्वारा उस प्रभु की सत्ता को सिद्ध कर सकता हूँ ।

जब यह संसार ईश्वर की कृति है और हम सब उसके पुत्र हैं तो हमारा संबंध बंधुत्व का होना चाहिए तथा ऐसी भावना तभी सुदृढ़ हो सकता है जब हम त्यागभाव से प्रभुप्रदत्त पदार्थों का सेवन करें । हमें संसार के पदार्थों में लोभ व आसक्ति की भावना को दूर भगाना पड़ेगा और इन्हें नश्वर समझना होगा । रूसी लेखक डोस्टविस्की ने अपनी पुस्तक “Brothers Karamozov” में लिखा है–

What would be marvellous is not that God should really exist, let the such an idea the idea of the necessity of God could enter the head of such a savage, vicous, Beast as man.

ईश्वर का होना इतना आश्चर्यजनक नहीं है जितना उसकी आवश्यकता का विचार, मानव जैसे दुष्ट एवं क्रूर प्रकृति के प्राणी के मस्तिष्क में आना ।

मानव-मन में प्रभु के प्रति आस्था कितनी गहरी रुचि है, इस पर विचार

करते हुए टॉलस्टाय ने लिखा है–

Never has man lived without GOD. If you remove one, he will create another.

व्यक्ति कभी भी परमात्मा के बिना नहीं रह सकता। यदि तुम एक परमात्मा को हटा दोगे तो उसके स्थान पर दूसरा बना लोगे।

एक बार सम्राट् अकबर ने अपने दरबारियों से पूछा कि क्या कोई ऐसा काम भी है जिसे मैं कर सकता हूं लेकिन खुदा नहीं कर सकता और सब तो चुप रहे, किन्तु बीरबल ने उत्तर दिया–

जहांपनाह चाहें तो मुझे अपने राज्य से निकाल सकते हैं लेकिन ख़ुदा नहीं निकाल सकता, क्योंकि ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ उसकी हुकूमत न हो।

वस्तुतः मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और गिरजे सब ही उस परमात्मा को याद करने के स्थान हैं। उनमें घंटे और शंख का बजाना अध्यात्म का राग है। मस्जिद में महराब के सामने नमाज, गिरजे में माला और ईसाइयों का क्रॉस के निशान सब उस परमात्मा की इबादत के अलग-अलग चिन्ह हैं। जैसे दाग़ दहलवी ने लिखा है–

ज़ाहिद शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर।
या वो जगह बतादे जहां पर ख़ुदा न हो।।

इसका उत्तर स्वयं दाग़ देहलवी लिखते हैं–

ऐ रिन्द! पी शराब जहाँ भी चाहे तू बेधड़क।
दिल में ख़ुदा नहीं तो कहीं भी ख़ुदा नहीं।।

कुरान शरीफ में ही हज़रत मुहम्मद साहिब फर्माते हैं–

अल्लाह ही की मल्कियत है मशरिक (पूर्व) में चाहे मग़रिब (पश्चिम) में जिस तरफ भी तुम रूख करो, उधर ही अल्लाह का रूख है क्योंकि वह अल्लाह ताला हर जगह व हमाँ-दाँ (सर्वज्ञ) है।

हम देखते हैं कि ईश्वर के नियम अटूट एवं अविचलित हैं। जिसकी

अद्‌भुत व्यवस्था आश्चर्यचकित कर देती है जिसका न्याय अपूर्व व अक्षुण्ण है, सम्पूर्ण ज्ञान के भण्डार उसके विश्वासयंत्र है। अनंतकाल से संसार में प्रकाश का प्रसार करने वाले सूर्य व चाँद उसकी अनुपम लीला के निमेषमात्र हैं।

उषा में किसकी छवि मुस्करा रही है? बसंत किसके यौवन का शृंगार किये ऋतु-ऋतु में उपस्थित होता है? श्यामल मेघों में कैसा स्निग्ध केशपाश लहरा रहा है? मंद मंद बहते मलयानिल में किसका सौरभ भरा उच्छवास है? रवि शशि किसके गोल कुण्डल है? पृथ्वी किसका पांव है? अंतरिक्ष किसका उदर है? द्युलोक किसका विशाल भाल है? इन सबको देखकर मानव आश्चर्यचकित रह जाता है।

पुष्पों की पंखुड़ियों में, पक्षियों के पैरों में, मेघों में, इन्द्रधनुष में, प्रभात की उषा आदि में कौन चित्रकार अपनी तूलिका से तरह-तरह के रंग भर रहा है। पवन के झकोरों में, पक्षियों के कलरव में, बादलों में, गर्जन में, झरनों की झर झर में, नदियों के कल-कल नाद में, कौन चतुर गवैया अपनी संगीत की सुरीली तान सुनाकर मानव को मंत्रमुग्ध कर रहा है?

सुधा भरे पुष्पों के प्याले में, प्रभात के मंद पवन में, अलसाये मेघों की मस्तानी चाल में, वायु में उद्वेलित पल्लवों के नृत्यों में काले बादलों की ओर से उगते चांद की मुस्कान में, अलसायी आँखों को चूमती रवि-रश्मियों के चुम्बन में, पर्वतों के गले मिलती सरिताओं के भुजबंधन में, पेड़ों से लिपटती लताओं के आलिंगन में, किसके हृदय का अमिट प्रेम उमड़ रहा है? ये सब बातें परमात्मा की सर्वव्यापकता की ओर ही तो संकेत करती है।

हम देखते हैं कि फुटबाल के मैदान में दोनों ओर से खिलाड़ी एकत्रित होते हैं। वे सभी अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न करते हैं कि फुटबाल ऑउट न हो जाए, परन्तु फिर भी ऑउट हो जाती है। खेल के क्षेत्र से बाहर चली जाती है परन्तु इस अनन्त आकाश में वह परमात्मा अकेले होते हुए भी एक नहीं

अपितु अरबों व खरबों गोल-गोल बालों की इस प्रकार व्यवस्था चलाता है कि कोई भी बाल अपने स्थान से इधर उधर नहीं हो सकती। इस प्रकार सारे ग्रह आदि अपने-अपने क्षेत्र में सुव्यवस्थित रूप से चल रहे हैं। इन सबको परमात्मा ही चला रहा है।

धन केवल साधन है परन्तु साध्य नहीं है। इसकी हमारे जीवन में अत्यधिक महत्ता है। यदि धन सब कुछ होता तो कोई भी धनी कभी भी बीमार न होता, न ही कभी दुःखी होता, न प्रभु का प्यारा होता। परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि सब धनी बीमार भी होते हैं दुःखी भी होते हैं और उनको संसार छोड़ना पड़ता है। अतः धन से बहुत कुछ खरीदा जा सकता है, परन्तु सब कुछ नहीं खरीदा जा सकता।

जगत्यां जगत्– जगत् की यह विशालता उस प्रभु की महिमा को प्रदर्शित कर रही है। जगत्, सृष्टि, संसार, प्रपंच आदि पर्यायवाची शब्द हैं। जगत् शब्द का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है।

1. ज – जायते, 2. ग – गच्छति, 3. त् – स्थीयते

इस प्रकार जगत् शब्द उत्पति, स्थिति और प्रलय तीनों का वाचक है।

जिस क्षणभंगुर संसार में हम रहते हैं वह अस्थायी है, आज है कल नहीं होगा। यहाँ सदा के लिए नहीं रहना है। इसके विषय में किसी कवि ने कितना सुन्दर लिखा है–

क्षणभंगुर जीवन की कलिका, कल प्रातः को जाने खिली न खिली।
मलयांचल की शुचि शीतल, मंद सुगंध समीर मिली न मिली।।
कलि काल कुठार लिये फिरता, तन नम्र है चोट झिली न झिली।
जपले हरिनाम अरी रसना, फिर अंत समय में हिली न हिली।।

II. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा

त्यक्त और भुञ्जीथा–इन दो शब्दों में सारी दुनियाँ की योजना समाई हुई है। भुञ्जीथा शब्द भुञ्ज धातु से बना है। इसका अर्थ है भोगना, सामान

इकट्ठा करना, उद्योग लगाना, खेतीबाड़ी करना, बगीचे लगाना आदि और त्यक्तेन शब्द का अर्थ है त्यागभाव से भोगना और बाँटकर खाना। भोग तो शरीर का धर्म है, प्रकृति का नियम है क्योंकि भूख लगने पर खाना प्रकृति का नियम है, छीनकर खाना विकृति है और बाँटकर खाना संस्कृति है। ममत्व के साथ भोग मत कर क्योंकि यह जगत् एवं इसमें जो कुछ भी तुझे मिला वह सब तेरा नहीं है उस प्यारे प्रभु का है।

वस्तुतः मनुष्य अपने जीवन में चिपकना चाहता है और उसकी यह चिपकने की इच्छा उसकी यात्रा में बाधा है। वह मार्ग है सराय नहीं, सड़कों को घेर कर खड़े हो जाइए, पुलिस गिरफ्तार कर लेगी। मार्ग चलने के लिए है डेरा डालने के लिए नहीं। त्यागभाव से भोगो! जो भोग त्यागभाव से भोगा जाता है, वह दीर्घजीवी होता है। जो भोगभाव से भोगा जाता है वह अल्पायु होता है। इसके विषय में तुलसीदास जी ने सत्य ही लिखा है–

तुलसी जग में यूं रहों, ज्यूँ रसना मुख माँहि।
खाती, घी और तेल नित, फिर भी चिकनी नाहिं।।

III **मागृधः–लालच मत कीजिये क्योंकि लालच बुरी बला है**

इसी प्रकार संसार के पदार्थों को भोगने का अधिकार सब को है, परन्तु उन्हें अपना समझकर उनसे चिपक जाने का अधिकार किसी को नहीं है। एक दिन सभी को सब कुछ छोड़कर चले जाना पड़ता है। भोग तो जीवन के साथ है। दुःख भोग में नहीं, भोग से चिपकने या भोगों को मर्यादित न रखने में है। तभी तो तुलसीदास जी ने कितना सुन्दर लिखा है–

तुलसी इस संसार में भूपति हुए अनेक।
मैं मेरी करते चले गए साथ तिनका न ले गए एक।।

किसी अंग्रेज़ी कवि ने कितना सुन्दर लिखा है–

There is no bribery like greed.
There is no wine like ego.
There is no pollution like mental pollution.
There is no corruption like soul corruption.

कमल के फूल की तरह रहो। कमल का फूल पानी में रहता है लेकिन डूबता नहीं। गृहस्थ में रहो, संतानोत्पत्ति करो, उनका पालन पोषण करो। पढ़ाओ लिखाओ धन भी कमाओ। धन कमाना कोई बुरी बात नहीं है परन्तु फंस न जाओ, लिप्त न हो जाओ। जगत् में बसो न कि फंसो। अब आपने देख लिया कर्मचक्र में फंसने का क्या परिणाम होता है? यह मोह-ममता आत्मा को नीचे ही नीचे धकेलती चली जाती है और व्यक्ति का पतन हो जाता है। अतः मोह-ममता से दूर रहकर कर्म करो।

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" प्रभु द्वारा दिए गये का भोग करो। जो बीत गया उसकी चिंता मत करो, जो अभी नहीं है उसकी इच्छा में दुःखी मत होवो। इसके विपरीत जो कुछ मिला है वह प्रभु को अर्पण कर उसका भोग करो। इसी में शांति एवं प्रसन्नता मिलेगी। जो भी आप के पास उपलब्ध है वह प्रभुप्रदत्त समझकर उसे स्वीकार करने में तथा उसे भोगने में आसक्ति नहीं होती क्योंकि उस अवस्था में भोग्य पदार्थ प्रभुप्रसाद बन जाता है। परन्तु यदि उपलब्ध पदार्थों को अपने पुरुषार्थ का परिणाम मानेंगे तो उसमें आसक्ति अवश्य होगी और उसके भोग में, उसके क्षय होने, उसके नाश होने की चिंता भी बनी रहेगी। आसक्ति और चिंता ही सारे दुःख का कारण है। वेद में भोग के लिए वर्जना नहीं है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति भोगों के बिना नहीं रह सकता। मनाही केवल आसक्ति की है। भोग्य पदार्थों में भगवद्प्रदत्त भावना होने से आसक्ति का स्वतः अभाव हो जाता है। जीवन के जीने की कला के विषय में एक हिन्दी कवि ने कितना सुन्दर लिखा है–

हर दिन इस तरह से बिताओ कि रात को नींद आ जाए।
हर रात इस तरह बिताओ कि सुबह शर्माना न पड़े।।
जवानी इस तरह बिताओ कि बुढ़ापे में पछताना न पड़े।
बुढ़ापा इस तरह बिताओ कि किसी के आगे हाथ फैलाना न पड़े।

IV. **कस्यस्विद् धनम् –**

कहने का भाव यह है कि धन एवं भोग्य पदार्थ किसके हैं? यह एक चिंतन का विषय है। संसार में जो कुछ भी पदार्थ हैं वह प्रभु से परिपूर्ण हैं और उसकी ही अभिव्यक्ति है। अतः धन, ऐश्वर्य, भोग और पदार्थ भी प्रभु से व्याप्त हैं। यह सब कुछ प्रभु का ही है। यदि इतनी बात समझ में आ जाए तो स्वभावतः धन के प्रति गृद्ध दृष्टि, लोभ एवं आसक्ति कभी भी पैदा नहीं हो सकती। जिस किसी भोग्य पदार्थ की मन में चाह उठे उसे पाने की कामना हो तो तुरन्त ही मंत्र के अंतिम वाक्य को स्मरण करके उसका चिन्तन करना चाहिए। असल में, यहाँ पर जो धन, वैभव आदि हैं वह सब प्रभु की महिमा मात्र है। यह धन न किसी का हुआ और न ही किसी का होगा। जिस पदार्थ को आज व्यक्ति अपना समझ रहा है, कल वह किसी और का था और क्या पता कल यह किसका हो जाए? अतः इसमें आसक्ति करना दुःख को ही निमंत्रित करना है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह धन किसका है? इसके उत्तर में विभिन्न विचार प्रस्तुत किए गए हैं जो कि इस प्रकार हैं–

1. सेना कहती है कि देखो! हमने चीन व पाकिस्तान के आक्रमणों से आपकी रक्षा की है वर्ना आपका सब कुछ लूटकर ले जाते। अतः यह धन हमारा है।

2. पुलिस कहती है कि हम जनता के जीवन, माल और सम्मान की रक्षा करते हैं। यदि पुलिस न हो तो चोर, डाकू आदि जनता को लूटकर ले जाये। इसलिए धन पर हमारा अधिकार है।

3. पूँजीपति कहते हैं कि हमने कारखाने लगाकर, धन को कमाया है और असंख्य लोगों को रोटी-रोज़ी दी है। इस कारण इस पर हमारा अधिकार है।

4. वैज्ञानिक कहते हैं हमने मशीनों का अविष्कार किया और दिमाग़ लगाया है इस कारण धन पर हमारा अधिकार है।

5. उपदेशक कहते हैं हमने लोगों को समझाया। लोगों को कुमार्ग से

सुमार्ग पर लगाया और उन्हें ज्ञान के द्वारा सुख शांति और आनंद प्रदान किया। अतः धन पर हमारा अधिकार है।

ऋग्वेद में लिखा है–

केवलाघो भवति केवलादी। –10.117.6

जो व्यक्ति अकेला खाता है वह पाप खाता है।

इसी प्रकार अथर्ववेद में भी लिखा है–

शतहस्त समाहर सहस्रहस्तसंकिर। –3.24.5

सैंकड़ों हाथ से कमाओ और हजारों हाथों से दान करो।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि अपनी कमाई को किस प्रकार व्यय करना चाहिए। इसके विषय में शास्त्रों में लिखा है–

धर्मार्थ यशसेऽर्थाय आत्मने स्वजनाय च।

अपनी कमाई के पांच समान भाग इस प्रकार करने चाहिए।

1. धर्माय – धर्म के लिए धन का व्यय करना। किसी संस्था अथवा व्यक्ति को गुप्तदान दे दो। किसी भी व्यक्ति को उस दान का पता न चले। यह है धर्माय। जैसे कोई रोगी है और उसके पास इलाज के लिए पैसे नहीं हैं तो चुपचाप जाकर उसके घर में यथाशक्ति गुप्तदान दे दो। यह सात्विक दान है।

2. यश से – यश प्राप्ति के लिए दान देना। अपने धन की किसी संस्था से पर्ची कटवा लेना। लोजी अमुक सेठ जी ने आर्य समाज के सत्संग भवननिर्माण के लिए 1,00,000/- रुपए दान दिया है। इस प्रकार का दान केवल यश प्राप्ति के लिए दिया जाता है। यह राजसी दान कहलाता है।

3. अर्थाय – इसका भाव यह है कि धन कमाने के लिए धन का ही प्रयोग करना। जैसे अपना धन बढ़ाने के लिए व्यापार करना, मिल लगाना, कृषि करना आदि इसके अंतर्गत आते हैं।

4. आत्मने–इसका अर्थ है कि अपने स्वास्थ्य को ठीक ठाक रखने के लिए अपने शरीर पर खर्च करना– भोजन पर, भवननिर्माण पर और अन्य

सुख सुविधाओं पर धन का व्यय करना इस श्रेणी में आता है। इसके बिना मानव का गुजारा नहीं क्योंकि शरीर एवं आत्मा की रक्षा करना परमावश्यक है। मानव समाज में हम भूखे-नंगे नहीं रह सकते। किसी ने इसके विषय में सत्य ही लिखा है–

जीवन के हैं तीन निशान, रोटी, कपड़ा और मकान।

5. स्वजनाय–अपनी कमाई का कुछ भाग अपने संबंधियों और मित्रों के लिए व्यय करना इस श्रेणी में आता है। जैसे– आपका कोई संबंधी अथवा मित्र निर्धन है तो उसकी यथायोग्य आर्थिक सहायता करना हमारा नैतिक और सामाजिक कर्तव्य बन जाता है। इस प्रकार धन आपके लिए जीवनयापन करने का साधन बन जाएगा न कि साध्य। वह आपका केवल सेवक होगा न कि स्वामी।

अतः यह कहना तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी कि सारी उपनिषदें प्रस्तुत मंत्र की व्याख्यायें हैं। इस प्रकार अपना जीवन जीने से प्रत्येक मानव सुखमय, शांतमय एवं आनंदमय जीवन व्यतीत कर सकता है। यह जीने की सच्ची कला है। स्वामी महावीर जी का सफल जीवन के लिए एक प्रेरक सूत्र है–

छोटों को देखकर जीओ, बड़ों को देखकर बढ़ो।
अच्छे के लिए प्रयास करो, बुरे के लिए तैयार रहो।।

3. भद्रप्राप्ति

बुराइयों को कभी जीवन में अपनाना नहीं चाहिए।
यह मीठा ज़हर होता है इसे खाना नहीं चाहिए।
सीधी राह पर जो जन चले जायेंगे।
वे सफल अपना जीवन बना जायेंगे।
मित्र मानो न मानो खुशी आप की।
हम सुना करके आगे चले जायेंगे।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्नऽआसुव

—यजुर्वेद 30.3, ऋग्वेद 5.82.5

बुराई को त्यागे भलाई करें हम।
तुम्हारे ही गीतों को गाते रहें हम।।
वेदों के सागर को पाकर सदा ही।
गोते उसी में लगाते रहें हम।।
दुरितों को त्यागे सदा दूर भागें।
भावों को अच्छे जगाते रहें हम।
मेरा ज्ञान क्या है तेरा ही दिया है।
सभी को हमेशा सुनाते रहें हम।।
समर्पित तुम्हीं को तुम्हारा ही वैभव।
हृदय से तुम्हीं को बुलाते रहें हम।। —डॉ० योगेन्द्र कुमार

हे प्रभु! आप कृपया हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए और जो कल्याणकारी, गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वे हमें प्राप्त कराइये।

वस्तुतः वेद के इस मंत्र में दो प्रार्थनाएं की गई हैं। प्रथम प्रार्थना है कि हे प्रभु! हमारी सब बुराइयों को दूर कर दीजिए। दूसरी प्रार्थना है कि हमारे में अच्छाइयाँ भर दीजिए। श्रेष्ठ जीवन के निर्माण के लिए, यशस्वी बनने के लिए एवं प्रभुप्राप्ति के लिए प्रथम जीवन की बुराइयों को दूर करना होगा तभी उसमें अच्छाइयाँ स्थिर रह सकेंगी क्योंकि दुरितों का निष्कासन एवं भद्रताओं

का निवसन ही राष्ट्रनिर्माण की कुंजी है। प्रस्तुत वेद मंत्र महर्षि दयानंद जी का सर्वप्रिय मंत्र था। इसी कारण उन्होंने यजुर्वेद के प्रत्येक अध्याय का शुभारंभ इसी मंत्र से किया और स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना के मंत्रों में भी इसे ही सर्वप्रथम स्थान दिया। इस प्रकार की प्रार्थना सब प्रकार की साम्प्रदायिकताओं से मुक्त है। सभी दुरितों से बचना चाहते हैं और भद्र को ग्रहण करना चाहते हैं।

महाभारत में एक घटना आती है कि एक बार द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर और दुर्योधन को अपने पास बुलाया और आदेश दिया कि देश के विभिन्न स्थानों में जाकर इस बात का पता लगाकर आओ कि कौन आदमी अच्छा है और कौन बुरा है? दोनों इस कार्य-पूर्ति के लिए अनेकों स्थानों पर गये और उन्होंने अच्छे और बुरे आदमियों की खोज की और इसके पश्चात् दोनों गुरु द्रोणाचार्य के पास आ गये।

गुरु द्रोणाचार्य ने सबसे पहले युधिष्ठिर से पूछा की कौन आदमी अच्छा है और कौन आदमी बुरा है?युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि मेरे अतिरिक्त सारे आदमी अच्छे हैं और मैं ही सबसे बुरा आदमी हूँ। इसके बाद उन्होंने दुर्योधन से पूछा और उसने उत्तर दिया कि मेरे अतिरिक्त सारे आदमी बुरे हैं और मैं सबसे अच्छा आदमी हूँ।

कहने का भाव यह है कि युधिष्ठिर ने अपने दोष और दूसरों के गुण देखे। परन्तु इसके विपरीत दुर्योधन ने अपने गुण देखे और दूसरे के दोष देखे। अतः हमें भी अपने दोष और दूसरों के गुण देखने चाहिये फिर शायद ही हमें कोई बुरा आदमी नज़र आये। अध्यापक, वकील और डाक्टर के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को दूसरों के दोष देखने का अधिकार नहीं है।

यहाँ तक कि बड़े-बड़े महापुरुषों ने भी अपने दोषों और दूसरों के गुणों को देखा। हम देखते हैं कि दोष किस में नहीं होते। वस्तुतः यह सारा संसार गुण-दोष से भरा पड़ा है। जैसे सूर्य में तपस है, चन्द्रमा में कालिमा है और सागर में खारा पानी है। जैसे- Alexander pope ने Essay on Man में लिखा है :—

Virtuous and vicious everyman must be.
Few in the extreme but all in degree.

नेकी एवं बदी हर व्यक्ति में होती है कुछ में बहुत अधिक होती है परन्तु कुछ में कम। केवल मात्रा का अन्तर होता है। कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है। अतः यदि कोई व्यक्ति दोष रहित मित्र को अपना मित्र बनाना चाहेगा तो उसे मित्र विहीन रहना पड़ेगा। यही कारण है कि संत-महात्माओं ने स्वयं को पतित पापी, नीच, छोटा कहकर पुकारा। जैसे कबीर जी कहते हैं :–

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोय।
जब दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।

इसके विषय में एक शिक्षाप्रद कहानी इस प्रकार प्रस्तुत की जाती है। एक राजा था। अपने राज्य में उसने नियम बना रखा था कि जो कोई चोरी करेगा, उसे फांसी की सजा मिलेगी। एक दिन राजमहल में चोरी हो गई। छान बीन हुई। तीन व्यक्ति पकड़े गये। अपराध साबित हो गया और तीनों व्यक्तियों को फाँसी की सजा दी गई। राजा के व्यक्ति उन्हें फाँसी देने ले गये। दो व्यक्तियों को उन्होंने फाँसी दे दी। तीसरे को देने लगे तो उसने कहा- ''ठहरो। फाँसी तो तुम दोगे ही परन्तु मुझे एक रहस्य ज्ञात है। यह किसी को बता देना चाहता हूँ जिससे संसार का कल्याण हो जायेगा।

लोगों ने पूछा – ''क्या रहस्य है?''

उसने कहा– ''मैं लोहे से सोना बनाना जानता हूँ?''

राजा के व्यक्तियों ने कहा – ''अच्छी बात है बतला, लोहे से सोना किस प्रकार बनता है?''

चोर ने कहा– ''तुम्हें नहीं, केवल राजा को बता सकता हूँ।''

यह बात राजा के कान में पहुँची। उसके मुख में भी पानी भर आया।

चोर को बुलाकर उससे पूछा– क्यों भाई? क्या यह बात सच है कि तू लोहे को सोना बना देता है।

उस चोर ने कहा- ''हां महाराज मैं बूटी जानता हूँ। उसे लोहे पर डाल देने से सोना बन जायेगा।

राजा ने पूछा– ''कितने लोहे का सोना बना सकता है तूं?''

उसने उत्तर दिया– ''जितना भी आप चाहें परन्तु बूटी मिलती है जंगल में। आप मेरे साथ दो आदमी भेज दीजिए। मैं बूटी लेकर आता हूँ। आप लोहा एकत्रित कराइये। राज्य भर के लोगों से भी एकत्रित कराइये। मैं सबके समक्ष सोना बनाकर दिखाऊँगा।''

तभी वह व्यक्ति जंगल से बूटी लेकर आया। हाथ में मलकर बूटी उसने एक मेज पर रख दी और बोला :–

''महाराज यह है बूटी! इसको लोहे के एक ढेर पर डाल देने से सोना बन जायेगा। परन्तु शर्त यह है कि बूटी को उठाकर वही व्यक्ति लोहे पर डालें, जिसने कभी जीवन में चोरी न की हो। मुझे तो चोरी के कारण फाँसी का दंड मिला है। मैं तो यह कर नहीं सकता। बड़े-बड़े मंत्री पदाधिकारी राज्य कर्मचारी और अन्य लोग विद्यमान हैं। उसमें से ऐसे मिल जायेंगे, जो इस बूटी को लोहे पर डाल सकें। उन्हें कहे कि बूटी को उठाये और लोहे पर डाल दें।''

राजा ने कहा– ''हां, ऐसा तो हो सकता है।''

राजा ने किसानों, दुकानदारों, ठेकेदारों, राज्य के कर्मचारियों, मंत्रियो आदि से पूछा परन्तु ऐसा कोई भी व्यक्ति न मिला जिसने जीवन में कभी चोरी न की हो।

चोर कहने लगा–''जब सारे ही चोर हैं तो मुझे अकेले को फाँसी क्यों दी जा रही है? सबको फाँसी दो।''

अतः स्वयं के दोषों को दूर करने के लिए स्वयं के दोषों को देखो! दूसरे के दोषों को देखने से अपने दोष दूर नहीं होते। वस्तुतः हम सब आधे-अधूरे एवं अपूर्ण हैं और केवल एक परमात्मा ही पूर्ण है। इसी प्रकार ज़ौक लिखते हैं–

दूसरों पर अगर तबसिरा (आलोचना) कीजिए।
तो सामने अपने आईना रख लीजिए।।

जैसे एक हिन्दी कवि ने कितना सुन्दर लिखा है–

इस दुनियाँ में सब चोर चोर,
कोई छोटा चोर, कोई बड़ा चोर ।
कोई धन का चोर, कोई मन का चोर,
कोई सुन्दरी चोर, कोई सुरा चोर ।
यह दुनियाँ है गोल मोल और इसबगोल,
बस और न बोल ।

अतः हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! हमारे दुरितों को भगा दो । इस का भाव यह है कि जीवन-यात्रा में पड़ने वाले विघ्न व बाधाएं दूर करो । ये बाधाएं अनेकों प्रकार की हैं जैसे लोभ, निर्धनता, अविद्या, आलस्य, रोग आदि । यदि सब कार्य ठीक हैं और जरा-सा भी दुरित रह गया हो तो कार्य ठीक नहीं होगा । जैसे –

आपका शरीर स्वस्थ एवं सुदृढ़ है परन्तु आपके पांव की सबसे छोटी अंगुली में एक सरसों के समान फोड़ा हो गया । तो क्या आप ठीक प्रकार चल सकते हैं ? वस्तुतः जीवन-यात्रा में आने वाली प्रत्येक कठिनाई दुरित है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कु त्यागने से ही सु की उपलब्धि होती है । जहाँ पर कु होगा वहाँ पर सु नहीं रह सकता । हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि कु व सु एक स्थान पर नहीं रह सकते । जब हम अपने जीवन से दुरित को निकालकर बाहर फैंक देते हैं तो हमें स्वतः ही भद्र की प्राप्ति होने लगती है । कुप्रथाओं को त्यागने से ही सुप्रथाओं का प्रचलन होगा ।

यदि कोई कमरा कूड़े-करकट से भरा पड़ा है, यदि हम उसमें सजाकर शुद्ध पवित्र वस्तुएं रखना चाहते हैं तो पहले उस कूड़े-करकट को कमरे से बाहर फेंकना पड़ेगा । इस प्रकार यदि हम अपने व्यक्तित्व में भद्र स्थापना करना चाहते हैं तो पहले हमें अपने व्यक्तित्व से सब दुरिताओं को उसी प्रकार निकालकर बाहर फैंकना होगा, जैसे– कमरे से कूड़ा-करकट फेंका जाता है । इसी प्रकार यदि हम परिवार, संस्था, राष्ट्र और विश्व का सुधार करना चाहते

हैं तो इसमें से सब प्रकार की बुराइयों को निकालना पड़ेगा और वहाँ पर अच्छाइयाँ स्वतः ही आ जाएंगी, क्योंकि यह एक सर्वमान्य सत्य है--कि अच्छाई और बुराई कभी भी एक साथ नहीं ठहर सकते। मानव जीवन के मुख्य तीन दोष निम्नलिखित हैं–

1. काया के तीन दोष – चोरी, व्यभिचार व हिंसा।

ओ३म् सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदम्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ।।

–ऋग्वेद 10.5.6, अथर्व. 5.1.6

अर्थ : वेदों में सात मर्यादायें निर्धारित की गई हैं। मर्यादा का अर्थ है मनुष्य को खा जाने वाली। जो व्यक्ति इन बुराइयों को अपनाता है उसका जीवन नष्ट हो जाता है। मंत्र में सात मर्यादाओं का उल्लेख हैं। निरुक्त के आधार पर सात मर्यादायें इस प्रकार से हैं– (1) सुरापान, (2) जुआ, (3) व्यभिचार, (4) मृगया, (5) कठोर दण्ड, (6) कठोर वचन और (7) मिथ्या दोष हैं। परन्तु मंत्र में जिन सात बातों का निषेध किया गया है और जिन को वेद में निषध वाक्य के नामों से पुकारा जाता है। वे निम्नलिखित हैं–

1.	स्तेनम्	–	चोरी करना।
2.	तल्पारोहणम्	–	व्यभिचार करना।
3.	सुरापानम्	–	शराब पीना।
4.	भ्रूण हत्या	–	गर्भ के बच्चे को मारना।
5.	ब्रह्म हत्या	–	विद्वान् को मारना।
6.	दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवनम्	–	बुरे कर्म को बार-बार करना।
7.	पातके नृतोद्यम्	–	पाप करके झूठ बोलना।

बिना आज्ञा से किसी भी व्यक्ति की वस्तु अथवा धन अपहरण करना, परस्त्रीगमन करना और किसी भी निर्दोष व्यक्ति की हत्या करना कायिक दोष हैं। इन तीनों दोषों का परित्याग ही मानव को चरित्रवान् एवं महान् बनाता है। जो व्यक्ति चरित्रवान् होता है। लोग उसका हृदय से आदर करते हैं और

उस पर विश्वास रखते हैं । रिश्वत लेना और अनुचित व्यापार करना भी चोरी है ।

2. वाणी में तीन दोष - गाली, निन्दा और झूठ ।

गाली, निन्दा और झूठ वाणी के मुख्य दोष है । इनका प्रयोग करने से मानव का चरित्र एवं विश्वास जाता रहता है । गाली-गलौच से क्रोधग्नि प्रज्जवलित होती है । यहां तक कि कई बार मारपीट और हत्या तक की घटनाएं हो जाती हैं । इसलिए हमें प्रियभाषी होना चाहिये जिससे पराये भी अपने हो जाते हैं और चतुर्दिक सुख एवं शांति फैल जाती है । जैसे तुलसीदास जी ने लिखा है-

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर ।
वसीकरन यह मंत्र है तजदे बचन कठोर ।।

3. मन में चार दोष - क्रोध, अहंकार, ईष्या एवं छल ।

वस्तुतः काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या आदि मानव के मानसिक शत्रु हैं जोकि जीवन में बाधक हैं । अतः मानव जीवन में सुख-शांति और आनंद की प्राप्ति के लिए काम को संयम, क्रोध को क्षमा, लोभ को संतोष, मोह को विवेक, अहंकार को नम्रता और ईर्ष्या को अतःप्रेरणा से जीतना चाहिए । वस्तुतः ये सब विकार अहंकार से ही उत्पन्न होते हैं क्योंकि अहंकार को पाप का मूल कहा गया है । अंततः इतना ही कहना काफी है कि व्यक्ति को बुराइयों को दूर करके अपना जीवन बेहतर बनाना चाहिए । जैसे किसी उर्दू शायर ने लिखा है –

गर कल में बेहतर नहीं हुए तुम ।
तो एक दिन की दौलत हुई तुम से गुम ।।

अब प्रश्न उठता है कि इन दुर्गुणों को कैसे दूर किया जाए । वस्तुतः इन दुर्गुणों को दूर करने के मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं ।

1. आत्म-निरीक्षण : व्यक्ति को रात को सोने से पूर्व आत्म-निरीक्षण करना चाहिए कि मैंने क्या-क्या ग़लत काम किये और उन्हें दूर करके अपने

जीवन को अच्छा बनाना चाहिए ।

2. प्रबल इच्छाशक्ति : व्यक्ति में यदि कोई दुर्गुण एवं दुर्व्यसन है तो उसे प्रबल इच्छाशक्ति के द्वारा छोड़ देना चाहिए ।

3. प्रायश्चित : अपने दुर्गुणों के लिए प्रायश्चित भी करना चाहिए कि अमुक गलती मैं आगे से नहीं करूँगा । तभी उसका जीवन सुधरेगा ।

4. कुसंग त्याग : उसे कुसंग का त्याग कर देना चाहिए क्योंकि कुसंग के कारण ही दुर्गुण आते हैं और दुर्गुण के कारण दुःख आते हैं ।

5. सत्संग : उसे सत्संग करना चाहिए ताकि उसका जीवन गुणों की खान बन जाए । सत्संग से ज्ञान प्राप्त होता है, और ज्ञान से अज्ञान दूर होता है, ज्ञान से जीवन का सुधार होता है । बिना सुधार के सब बिगाड़ ही बिगाड़ होता है ।

6. स्वाध्याय : व्यक्ति जिस ग्रंथ का स्वाध्याय करता है । उस लेखक के साथ व्यक्ति का सत्संग हो जाता है । स्वाध्याय आत्मा की खुराक है ।

7. प्रभुभक्ति : यदि कोई व्यक्ति सच्चे दिल से प्रभुभक्ति करने लग जाये तो उसके सारे पाप दूर हो जाएंगे और वह पुण्यात्मा बन जाएगा और प्रभुभक्ति में उसे आनंद आने लगेगा । इसमें प्रभु की स्तुति, प्रार्थना और उपासना आ जाती है ।

8. परोपकार करना : यदि व्यक्ति परोपकारी कार्य करेगा जैसे किसी गरीबों की सहायता करना, दान देना, निष्काम सेवा करना आदि, तो स्वतः ही वह अच्छा आदमी बन जायेगा । जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में --

परोपकार के गुण अपने अंदर लाता जा ।
जो अवगुण हैं तेरे अंदर उनको दूर भगाता जा ।।

4. मानव बन

मैं तुम्हें अपने उसूलों की कसम देता हूँ।
मुझको मज़हब के तराजू में न तोला जाए।।
मैंने इंसान ही रहने की क़सम खाई है।
मुझको हिन्दू या मुसलमान न समझा जाए।। -अशोक साहिल

वेदों के अध्ययन, अनुशीलन, अनुसंधान, अन्वेषण, अवगाहन, अभ्यास, अनुभव, मंथन, छानबीन, निरीक्षण, समीक्षण, परीक्षण से प्रतीत होता है जैसे नदियों में गंगा, वृक्षों में पीपल, दही में मक्खन और पशुओं में गाय सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार वेदों को भी संसार के विभिन्न विद्वानों एवं गिन्नीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स ने संसार के पुस्तकालय में प्राचीनतम एवं सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ घोषित किया है। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) के अधिकारियों ने विवेकपूर्ण निर्णय लेकर चारों वेदों को भारत से मंगवाकर अपने पुस्तकालय में मानवकल्याण के प्रथम ज्ञानग्रंथ के रूप में मान्यता प्रदान की है। इसके अतिरिक्त अमेरिकी संसद् में भी गायत्री मंत्र का उच्चारण और शांतिपाठ की ध्वनि सारे संसार को सुनाई दी है। क्योंकि ये दोनों मंत्र सारे संसार के कल्याण की कामना, शान्ति तथा समृद्धि के सूचक हैं और इनमें किसी विशेष सम्प्रदाय का वर्णन नहीं है। वेद शब्द के चार अर्थ हैं—ज्ञान, शक्ति, विचार और लाभ। संसार की सारी समस्याओं का समाधान केवल वेदों में है। इन का समाधान गीता, पुराण, बाइबल, क़ुरान आदि में नहीं है। क्योंकि वेद कोई तोता-मैना की पुस्तक नहीं है। इनमें परोक्षवाद है। शब्द कुछ हैं और उनके अर्थ कुछ और हैं। वेदों में 20,416 मंत्र, 1,53,826 शब्द, 8,64,000 अक्षर और 24,000 छंद हैं। वेद स्वतः प्रमाण हैं। इसका अर्थ यह है कि इन्हें किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। अतः इनमें मिलावट नहीं की जा सकती है। इनके अतिरिक्त शेष सारे ग्रंथ परतः प्रमाण हैं। इन्हें वेद के प्रमाण की आवश्यकता है। इन में मिलावट भी की गई है। वेद प्रभु द्वारा प्रकट हुये हैं जब कि अन्य ग्रंथ मानवकृत हैं। जैसे कि महर्षि दयानन्द जी ने कहा था—

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है जो इस पर खरा उतरे ले लो। शेष सब छोड़ दो। व्यर्थ के व्यामोह (अज्ञानता) में न पड़ो।

ऋग्वेद की एक सूक्ति है—

मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्। —10.53.6

पहले स्वयं मानव बन और फिर देवताओं के समान विश्वकल्याण के लिए हितकारी संतान उत्पन्न कर। मानव बनने के लिए निम्नलिखित चार वस्तुएं आवश्यक हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

व्यक्ति इन चारों को अपने जीवन में अपनाकर ही मानव बन सकता है। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में—

इस ज़िन्दगी में बन्दे, कुछ ऐसा काम कर जा।
आया है इस जहाँ में, कुछ पैदा नाम कर जा।।
निमंत्रणों के पावन युग में हम मानव निर्माण करें।
स्वार्थ साधना की आँधी में वसुधा का कल्याण करें।।

प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रभु-प्रतिनिधि बनकर सृष्टि में मानवता का प्रार्दुभाव एवं प्रकाश करें। यही मानव धर्म है परन्तु आज न जाने मानव को क्या हो गया है? न वह केवल अपने को मानव कहता है, न वह मानवता को अपना धर्म समझता है। मानवता के अतिरिक्त मानव का धर्म और हो ही क्या सकता है? परन्तु आज उल्टी गंगा बह रही है।

एक कुत्ते से पूछिए तू कौन है? उत्तर मिलेगा कि मैं कुत्ता हूँ। इसी प्रकार एक गधे से पूछिए कि तू कौन है? उत्तर मिलेगा मैं गधा हूँ आदि। परन्तु आप किसी मानव से पूछिए कि आप कौन हैं? तो मैं मानव हूँ। ऐसा उत्तर न मिलकर कोई कहेगा कि मैं हिन्दू हूँ, कोई कहेगा मैं मुसलमान हूँ आदि। आज मनुष्य मनुष्य का वैरी हो रहा है। आज का इन्सान, इन्सान न बनकर शैतान बन बैठा है। यदि संसार सारे वेदमंत्रों को भुला दे तो भी अकेली **'मनुर्भव'** वेदसूक्ति ही सारे संसार को एकता के सूत्र में बांध सकती है जबकि अन्य सम्प्रदाय संसार को बाँटते हैं। मनुर्भव वेदसूक्ति में मानव बनने का दिव्य संदेश समूची विश्व की मानवता के लिए दिया गया है। यही वेद-निर्देश है, यही वेद-उपदेश है और यही वेद-संदेश है। आधुनिक मानव के विषय में प्यारे लाल "प्यार" सत्य ही लिखते हैं—

ईश्वर की बनाई सृष्टि में इन्सान का दर्जा ऊँचा है।
इन्सानों में भी देखा धनवान का दर्जा ऊँचा है।

बलवाले ये कहते हैं कि बलवान् का दर्जा ऊँचा है ।
सारी दुनियाँ कहती है कि भगवान् का दर्जा ऊँचा है ।
पर आज की गुंडागर्दी में ये साफ दिखाई देता है ।
इन्सान और भगवान् से भी शैतान का दर्जा ऊँचा है ।।

वस्तुतः आधुनिक मानव मुख्यतः क, ख, ग, और घ वर्णों का शिकार होकर रह गया है । इन वर्णों का अर्थ है कि मानव जीवन का मुख्याद्देश्य है—कमाना, खाना, गाना-बजाना, घर बनाना आदि है । हमारे कहने का भाव यह है कि उसका जीवन पशु तुल्य है, जिसने केवल भौतिक सुख सुविधाओं को अपनाया है । इसके विषय में अकबर इलाहाबादी ठीक ही लिखते हैं—

हम क्या कहें हबीब क्या कार-ए-नुमया कर गये ।
बी.ए. हुए नौकर हुए पैंशन मिली और मर गये ।।

आज मानव भूल गया है कि भोग का अंतिम परिणाम रोग है । हम देखते हैं कि आज जितना भोगवाद बढ़ रहा है । उतना ही रोगवाद बढ़ रहा है । अतः हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि गोपाल दास ''नीरज'' ने सत्य ही लिखा है—

अब तो मज़हब कोई ऐसा भी चलाया जाए ।
जिसमें इन्सान को इन्सान बनाया जाए ।।

एक उर्दू शायर के शब्दों में—

कहीं ये धर्म बनते हैं, कहीं ये इमान बनते हैं ।
हिन्दू, सिक्ख, इसाई या मुसलमान बनते हैं ।।
खबर कर दो जमाने को, हमारे पास आ जाय ।
ये महफ़िल है ओ साक़ी ! यहाँ इनसान बनते हैं ।।

इसलिए देवराज आर्य मित्र अपनी कविता ''मनुर्भव'' में लिखते हैं—

मानव का जीवन पाकर दानवता के काम न कर ।
अंत समय पछताएगा इस जीवन को बरबाद न कर ।।
मांस, मछली, अण्डों से मत पेट को क़ब्रिस्तान बना ।
स्वस्थ निरोग रहना चाहे तो शुद्ध आहार विहार बना ।।
धुम्रपान एवं मद्यपान से वातावरण को मत दूषित कर ।
अन्यथा साफ करेगा तू ही सांप और सूअर बन कर ।।
कुछ ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैदिक सत्संग जाया कर ।
आत्म कल्याण की दृष्टि से ईश्वर के गुण गाया कर ।।

अब प्रश्न उठता है कि विश्व में सुख, शांति एवं आनंद का साम्राज्य कैसे स्थापित किया जाए ? इसके लिए परमावश्यक है प्रत्येक मानव पर समग्र

विकास के लिए काम किया जाए। पहले प्रत्येक व्यक्ति का आत्मिक सुधार किया जाए फिर उसका चरित्र निर्माण किया जाए। इसी प्रकार क्रमशः आत्मिक विकास के उपरांत मुहल्ले का विकास, नगर, राज्य, राष्ट्र और विश्व का स्वयं विकास हो जायेगा।

UNESCO के एक सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 65% अपराधी परिवारों के कुसंस्कारों से ही बनते हैं। यदि परिवार में आध्यात्मिक वातावरण कायम हो जाये तो विश्व का सुधार स्वयं ही हो जायेगा। हमारे वेद, उपनिषदों ने भी इसी सिद्धान्त को आधार बनाकर स्वकल्याण द्वारा विश्व कल्याण सरीखी वैज्ञानिक भावना पर बल दिया है। इसके विषय में आइनस्टाइन से भी किसी व्यक्ति ने एक बार प्रश्न किया था–

संसार में इतने दुःख हैं, इतनी अशांति। क्या उसे दूर करने का कोई उपाय है।

इसका आइनस्टाइन ने उत्तर दिया था–

हां, है। केवल यही कि उचित मार्ग दर्शन द्वारा इन्सान के चरित्र का निर्माण किया जाए।

'मनुर्भव' सूक्ति में एक और गम्भीर भावनिहित है। ''मानव बन'' यह कब कहा जाता है, जब कोई सभ्य समाज के सभ्य नियमों का उल्लंघन करके असभ्य व्यवहार करता है तो आप उससे कहते हैं तू आदमी है कि जानवर। इंसान है कि हैवान। आकृति में मानव होते हुए भी जो पशुवत् व्यवहार करता है उसके प्रति यह सूक्ति लागू होती है। वे इस्लाम, ईसाइयत, हिन्दू, सिक्ख आदि पंथों के अनुयायी और ये वादों और राजनीतिक सम्प्रदायों के अभिमानी व्यक्ति यदि नित्य आत्मनिरीक्षण करने लग जाए तो ये भी स्वयं को मनुर्भव कहेंगे और मानव बनेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद-वर्णित प्रस्तुत सूक्ति के सार्वभौम प्रयोग से सारा संसार मानव बन सकता है और संसार का पूर्ण सुधार हो सकता है। इसलिए सभी शिक्षा संस्थानों में मानव बनना सिखाना चाहिए। इससे विश्व के मानव सुधार में बड़ी सहायता मिलेगी। जीवन का निर्माण जन्म होने के उपरांत से नहीं अपितु गर्भ स्थिति के क्षण से ही होता है। गर्भाधान से पूर्व दम्पति शुद्ध खान-पान, शुद्ध आचरण रखे, जिससे उत्तम संस्कारी सन्तान उत्पन्न होवे। दिव्य दम्पति बने तभी वे दिव्य जनों को जन्म दे सकेंगे। दिव्य जन ही विश्व का वैदिकीकरण एवं सज्जनीकरण कर सकेंगे। जैसे मुनिश्री तरुण सागर जी के शब्दों में–

धरती को स्वर्ग बनाना है तो इंसान को इंसान बनाना होगा। इमारतें,

खेत-खलिहान और बाग़-बगीचे को अच्छा बनाने से कुछ नहीं होगा। इंसान की सोच अच्छी होनी चाहिए। सिक्के की कीमत गिर रही है, डॉलर की कीमत गिर रही है। मुझे इस बात का कोई ग़म नहीं है, लेकिन आदमी की कीमत गिर रही है। मुझे इस बात की चिन्ता है। महंगाई बढ़ रही है और आदमी की जात सस्ती हो रही है। यह चिन्ता का विषय है। किसी का मर्डर करना हो, अपहरण करना हो रुपयों के दम पर सब होता है। अगर हम इन्सान बना सके तो यह हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।

—कड़वे प्रवचन (भाग 5 पृ. 107)

वस्तुतः भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण हमारे सामने जो प्रश्न है वह रोटी, कपड़ा और मकान का है। हम समझते हैं कि इन समस्याओं के हल हो जाने पर हमारे सम्मुख शेष समस्या नहीं रहेगी एवं हम सुख चैन से जीवन यापन कर सकेंगे। यह ठीक है कि रोटी, कपड़ा और मकान का हमारे जीवन में अत्यधिक महत्व है। परन्तु इसी से मानव का सर्वतोमुखी विकास सम्भव नहीं। भौतिक दृष्टि से उन्नत समझे जाने वाले देशों के इतिहास साक्षी हैं जहाँ पर वैभव एवं विलासिता में निवास करता हुआ मानव भी व्याकुल, अशांत, असंतुष्ट है और मानसिक तनाव का शिकार है। क्योंकि धन से भौतिक सुख सुविधाओं की वस्तुएं मिलती हैं न कि संतोष और शांति।

यह दारुण दुर्भाग्य का विषय है कि आज संसार में सब कुछ हो रहा है परन्तु यदि नहीं हो रहा तो एक मानव-निर्माण नहीं हो रहा। हम देखते हैं कि हमारी सरकार पंचवर्षीय योजनाएं तो बनाती है परन्तु मानव-निर्माण की कोई भी सरकार योजना नहीं बनाती है। इस कारण खुमार बाराबंकी ने कहा है—

सभी कुछ हो रहा है इस तरक्क़ी के ज़माने में।
मगर यह क्या गज़ब है कि आदमी इंसान नहीं होता।।

आज प्रत्येक माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियों को डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, आई.ए.एस. आदि बनाना चाहते हैं। यहाँ तक कि आज बच्चे भी डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, आई.ए.एस. आदि बनना चाहते हैं। आज तक मुझे कोई भी गृहस्थी ऐसा नहीं मिला जो कि अपने बच्चों को मानव बनाना चाहता हो। अर्थात् कोई भी सच्चे अर्थों में मानव बनना अथवा बनाना नहीं चाहता। यदि कोई व्यक्ति मानव नहीं है तो वह अच्छा डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, आई.ए.एस. आदि कभी भी नहीं हो सकता। प्रभु ने किस लिए भेजा था मानव को और वह क्या करने लगा? एक कवि ने कितना सुन्दर लिखा है—

कैसे बचेगी दुनियाँ? एटम बमों पर बैठी।
ईश्वर व धर्म तजकर विज्ञान पर है ऐंठी।।
भयभीत हैं परस्पर सारे जमाने वाले।
क्या हो रहा है भगवन्? दुनियाँ बनाने वाले।।
शैतान पर विश्वास भले ही कर लूं।
आदमी देख कर डर जाता हूँ।।

इसके विषय में एक यूनानी दार्शनिक के जीवन की एक घटना आप की सेवा में प्रस्तुत करना चाहता हूँ। एक दिन यूनानी दार्शनिक डायोगनिस सूर्य के प्रकाश में हाथ में लालटेन लिए घर से निकल पड़ा और आँखें फाड़ कर इस प्रकार देखने लगा जैसे उसकी कोई वस्तु खो गई हो। लोग इतने बड़े विद्वान् को दिन के प्रकाश में लालटेन लिए इस प्रकार घूमते देखकर आश्चर्यचकित हो गये। कुछ व्यक्ति उसे आधा पागल कहने लगे। इसके विपरीत कुछ व्यक्तियों ने आगे बढ़कर उससे पूछा कि आप तो इतने बड़े विद्वान् हैं। फिर इस प्रकार हाथ में लालटेन लेकर दिन में इस प्रकार घूम रहे हो? दार्शनिक ने उत्तर दिया–

हां! मैं किसी खोई वस्तु की तलाश कर रहा हूँ?

लोगों ने प्रश्न किया–

आपका क्या खो गया?

एक ठंडी आह भरते हुए दार्शनिक बोला–

आज मानवता खो गई है मैं उसकी तलाश कर रहा हूँ। मैं मानव को ढूंढ रहा हूँ।

इस पर कुछ मनचले नवयुवकों ने पूछा–

तो क्या हम मानव नहीं है?

दार्शनिक बोला–

नहीं! आप में से कोई दुकानदार है तो कोई ग्राहक, कोई जमींदार है तो कोई किसान, कोई मालिक, तो कोई मजदूर, परन्तु शोक! आप में से कोई भी मानव नहीं है।

वस्तुतः आज का व्यक्ति दोहरा जीवन जी रहा है। वह मंदिर में पानी छानकर और बाहर शराब पी रहा है। किसी भी व्यक्ति को जानना एवं

पहचानना अत्यधिक कठिन कार्य है । वस्तुतः हम व्यापारी, अफसर, डॉक्टर, वकील तो हैं परन्तु मानव नहीं हैं । अतः मानव का दानव बन जाना उसकी पराजय है और मानव का मानव होना उसकी विजय है । परन्तु मानव का महामानव होना उसकी महान् उपलब्धि है । जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगिराज श्रीकृष्ण, आदिशंकराचार्य, गुरुनानक, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानंद आदि ने महामानव बनकर जीवन में महान् उपलब्धि प्राप्त कर ली । वस्तुतः जब व्यक्ति स्वार्थ से ऊपर उठ जाता है तो वह संस्था बन जाता है । जब वह कुछ सिद्धांत अपनाकर समाज का कल्याण करता है तो वह सिद्धांत बन जाता है और जब वह संसार के कल्याण के लिये कार्य करता है तो वह धर्म बन जाता है । अतः ये महान् विभूतियां अपनी महान् उपलब्धियों के कारण आज भी अमर हैं और प्रलय तक अमर रहेगी । जैसे एक कवि के शब्दों में–

क्या मार सकेगी मौत उसे औरों के लिये जो जीता है ।
मिलता है जहाँ का प्यार उसे जो औरों के आँसू पीता है ।।
होना होता है जिनको अमर वो लोग तो मरते ही आये ।
औरों के लिए जीवन अपना कुर्बान वो करते ही आये ।।
धरती को दिये जिसने बादल वो सागर कभी न रीता है ।।

इस प्रकार सतपाल 'पथिक' लिखते हैं–

किसी के काम जो आए उसे इन्सान कहते हैं ।
पराया दर्द अपनाए उसे इन्सान कहते हैं ।
यो भरने को तो दुनियाँ में पशु भी पेट भरते हैं ।
'पथिक' जो बाँट कर खाये उसे इन्सान कहते हैं ।।

आज मानव चन्द्रमा एवं मंगल पर भी पहुँच चुका है । परन्तु मानवता भूल चुका है । अतः रूसी भाषा में साहित्यकार मैक्सिम गोर्की ने लिखा है–

We have been taught how to fly in the air like birds. We have been tought how to swim in water like fish, but how to level on earth, we donot know.

हम पक्षियों की भाँति आकाश में उड़ना सीख गये और जल में मछलियों की भाँति तैरना भी हमें आ गया है । परन्तु धरती पर कैसे रहें हम यह न जान पाये ।

मनुष्य अपने सुख-दुःख की कहानी कह सकता है परन्तु पशु नहीं। अतः वेद कहता है कि मानव बन। हिन्दू, मुसलमान आदि बनने में वह आनंद नहीं जो मानव बनने में। यदि कोई व्यक्ति हिन्दू बनेगा तो हिन्दुओं से ही प्रेम करेगा और यदि वह मुसलमान बनेगा तो वह केवल मुसलमानों से ही प्रेम करेगा। परन्तु मानव बन कर तो वह समूची मानवता से प्रेम करेगा और उसका हृदय अति उदार हो जायेगा।

वस्तुतः मानवता भवन, मोटरकार, वेश-भूषा, पद-प्रतिष्ठा, धन-दौलत, डिग्रियों आदि में नहीं है वह राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री आदि से विवाही नहीं जाती है। वह तो विवाही जाती है उससे जो उसके अनुसार आचरण करता है। तभी तो एक उर्दूशायर ने कितना सुन्दर लिखा है—

क़ुरान की आयत से यह आवाज़ आती है।
गीता भी तुम्हें रोज़-रोज़ सुनाती है।।
क्या ग्रंथ, क्या अज़ील और क्या वेद हैं कहते?
सब एक ही बंदे किसी की कोई नहीं जाति।
यह ख्याले मज़हब तूने ही नादान बनाया।।

इसी प्रकार मानव (आर्षग्रंथ) नामक कविता में पं. प्रकाश चन्द्र कविरत्न लिखते हैं—

मानव होकर मानवता से कितना तुमने प्यार किया है?
इस जीवन में कितना तुमने औरों का उपकार किया है?
सुन पाते हो इन कानों से तुम कितनों की करुण कहानी।
डाल सके पर-दुख दवा में कितना निज आँखों का पानी?
कितनों के अवलम्ब बने हो, कितनों को भर अंक लगाया?
स्वयं गरल पी-पीकर कितना औरों को पीयूष पिलाया?
बन कर निर्देशक कितनों को तुमने भूली राह बताई।
कितनों के तमसावृत मन में तुमने जीवन ज्योति जगाई?
लोभ, मोह, मद कितना छोड़ा, नाता काम-क्रोध से तोड़ा।
विषय कामनाओं से हटकर कितना प्रेम ईश से जोड़ा?
जीवन का अर्थ यहाँ है, क्यों कंचन सा तन पाया।
क्या इसको कुछ समझ सके हो, क्यों नर भूतल पर आया है?

क्या अपनों की परिभाषा में सीमित है परिवार तुम्हारा।
क्या न सुनी अमृतवाणी है कुटुम्ब संसार हमारा है।
कितना त्याग सके परनिन्दा कितना अपना अन्तर देखा?
कितना रख पाये हो अब तक अपने पाप पुण्य का लेखा?

अन्ततः इतना ही कहना काफी होगा कि पौराणिक भाई रामायण व गीता को तो मानते हैं परन्तु रामायण व गीता की नहीं मानते। आर्यसमाजी भाई वेद व सत्यार्थप्रकाश को तो मानते हैं परन्तु वेद व सत्यार्थप्रकाश की नहीं मानते। यहूदी, पारसी और अंग्रेज़ भाई बाइबल को तो मानते हैं परन्तु बाइबल की नहीं मानते। मुसलमान भाई क़ुरान को तो मानते हैं परन्तु क़ुरान की नहीं मानते। इसी प्रकार सिख भाई श्रीगुरुग्रंथसाहिब को तो मानते हैं परन्तु श्रीगुरुग्रंथसाहिब की नहीं मानते।

अब प्रश्न उठता है कि ये सब किसकी मानते हैं। बहुधा ये सब अपने-अपने मन जिसको मानव शरीर का प्रधानमंत्री कहा जाता है, की मानते हैं। क्योंकि संसार के अधिकतर लोगों ने मन को गुरु बना रखा है। मन को गुरु बनाने की अपेक्षा शिष्य बनाओ। क्योंकि आत्मज्ञान न होने के कारण आत्मा व मन में गांठ पड़ गई है और व्यक्ति ने अपनी इन्द्रियां मन व बुद्धि को प्रभु में लगाने की अपेक्षा सांसारिक मोहमाया में लगा रखा है। परन्तु जब जीवात्मा और परमात्मा के मध्य से माया भाग जाती है तो उसे आत्मज्ञान होता है। तब वह अपनी आत्मा की आवाज़ से ही कार्य करने लगता है। मेरी बहनो और भाइयो! मन की मानोगे तो जीवन भर दुःखी रहोगे। संसार के सब व्यक्तियों को चाहिये कि वे श्रुति की मानें यदि श्रुति की नहीं मानते तो स्मृति की माने। यदि स्मृति की नहीं मानते हैं तो महापुरुषों की मानें। यदि महापुरुषों की नहीं मानते तो अपनी आत्मा जिसको मानवशरीर का राष्ट्रपति कहा जाता है, की मानें तभी व्यक्ति सच्चे अर्थों में मानव बनेगा और मानवता से प्रेम करेगा जैसे उर्दूशायर बिलगवी लिखते हैं–

ये झगड़े मंदिर-ओ-मस्जिद के छोड़े।
जो दिल टूटे आए हैं उनको जोड़े।
सच्चाई से कभी भी हम मुँह न मोड़ें।
ख़ुदा से राम से नाता न तोड़े।

मुहब्बत के दीये दिल में जलाएं ।
नया इक प्यार का मज़हब चलाए ।।

कहने का भाव यह है कि बहुधा व्यक्ति कहता कुछ है और करता कुछ है । व्यक्ति की करनी-कथनी, चर्चा-चर्या एवं उच्चारण-आचरण में अंतर होता है । वस्तुतः हम उपदेश सुनते हैं मन भर, देते हैं टन भर और अमल करते हैं कण भर । इसीलिये किसी ने सत्य ही कहा है कि संसार का सबसे बड़ा उपदेशक वह है जो स्वयं को उपदेश देता है । परन्तु जो व्यक्ति मन, वचन, कर्म से एक होता है वह वस्तुतः सच्चा महात्मा होता है । संसार में ऐसे महात्मा बहुत कम देखने को मिलते हैं । यहाँ तक कि बड़े-बड़े उपदेशकों का भी यही हाल है । क्या वे जो उपदेश करते हैं उसे अपने आचरण में उतारते हैं? यदि उतारते हैं तो मैं उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ । यदि नहीं तो मुझे उनके हाल पर अफ़सोस है । जैसे तुलसीदास जी ''रामचरितमानस'' में लिखते हैं–

पर उपदेश कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे । –लंकाकाण्ड 77.1

इसी प्रकार उर्दूशायर इक़बाल भी फरमाते हैं–

इक़बाल बड़ा उपदेशक है, मन बातों से मोह लेता है ।
गुफ़्तार का ग़ाज़ी तो बना, किरदार का ग़ाज़ी बन न सका ।।
अमल से ज़िन्दगी बनती है जन्नत भी जहन्नुम भी ।
ये खाली अपनी फ़ितरत से न नूरी है न नारी है ।।

5. कल्याणकारी मार्ग

ओ३म् स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।

पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ।। ऋग्वेद 5.51.15

1. स्वस्ति पन्था–कल्याण मार्ग, 2. अनुचरेम्–अनुसरण करें, 3. साविव–समान, 4. ददता–दानी, 5. अघ्नता–अछूता, अहिंसक, 6. जानता–ज्ञानी, 7. संगमेमहि–संगति करें ।

हम सूर्य एवं चन्द्रमा के समान कल्याण मार्ग का अनुसरण करें । इसके पश्चात् दानी, अहिंसक और ज्ञानी व्यक्तियों की संगति करें ।

हमारे कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार सूर्य व चन्द्रमा जनता को प्रकाश का मार्ग बताते हैं उसी प्रकार प्रत्येक ज्ञानी व्यक्ति अन्य लोगों का मार्ग दर्शक बने । क्योंकि परोपकार, अहिंसा व ज्ञान ये तीन बातें हैं जो व्यक्ति के हृदय को उन्नत करने वाली हैं । अतः इन गुणों के धारण करने वालों के साथ रहकर व्यक्ति को अपने अंदर ये गुण बढ़ाने चाहिये ।

वस्तुतः व्यक्ति का शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है और पाप पुण्य जीवन के दो रथ हैं । यदि वह जीवन में स्वस्ति के साथ संचालन करके सफलता प्राप्त करना चाहता है तो शरीर को स्वस्थ एवं निरोग बनाना चाहिये । बुद्धि का परिष्कार करना चाहिये । इसके अतिरिक्त धर्म पर चलकर उसके चरम लक्ष्य मोक्ष पर पहुँचाइये । अपने जीवन को सूर्य व चन्द्रमा के समान कल्याण पथ का पथिक बनाएं । ऐसा करने के लिये हमें दानी, अहिंसक और ज्ञानी सज्जनों की संगति ही करनी चाहिए, क्योंकि सत्संग से जीवन निर्माण होता है और कुसंग से जीवन का विनाश होता है । श्री राम शर्मा के शब्दों में –

हमें अपने व्यक्तिगत जीवन में और पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में हर कार्य नियम से करने की आदत डालनी चाहिए । अपने आहार, विहार, व्यायाम, पूजा-पाठ, कार्य-व्यापार सभी को नियमपूर्वक सुव्यवस्थित रीति से करना चाहिए । परिवार के सदस्यों, विशेषकर बच्चों को प्रारंभ से ही इसका महत्व समझाना चाहिए जिससे वे आगे चलकर सूर्य के समान समाज में चमकते रहें । –वेदो का दिव्य संदेश पृ० 185

सूर्य हमारे लिये क्या करता है?

1. प्रकाश प्रदाता – सूर्य सारे संसार को प्रकाश देता है और अंधकार को दूर करता है। इसी प्रकार हम भी काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार के अंधकार को नियंत्रण में करके उसके स्थान पर क्रमशः कामना (भावना), मन्यु (आध्यात्मिक या उचित क्रोध), प्रयत्न व पुरुषार्थ, स्नेह (कर्त्तव्य परायणता), आत्मगौरव एवं नम्रता आदि गुणों को अपनाकर समूची मानवता का कल्याण करें।

2. न्यायकारी – सूर्य सारे संसार को समान रूप से प्रकाश देता है चाहे कोई अमीर हो या ग़रीब। इसी प्रकार हम भी बिना भेदभाव से सब के साथ न्याय करे।

3. हँसना – सूर्य उदय एवं अस्त होते समय हँसता रहता है। इसी प्रकार हम भी जन्म से मृत्यु तक हँसते रहें। जैसे महर्षि दयानंद ने मृत्यु से पूर्व कहा था–

तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरी इच्छा पूर्ण हो, तुमने अच्छी लीला की।

4. कोई अवकाश नहीं (No Vocation) – सूर्य से हमें शिक्षा मिलती है कि यह प्राणीमात्र के कल्याण के लिये निरंतर अपना कार्य करता रहता है। यदि भारत में जब रात होती है तो अपना कार्य अमेरिका में करता है। इस प्रकार हमें भी संसार के कल्याण के लिये अथक परिश्रम करना चाहिए। सूर्य अपने निर्धारित समय पर उदय होता है और निर्धारित समय पर ही अस्त होता है। हमें सूर्य से समय पर अपना कार्य करने की शिक्षा लेनी चाहिए, सूर्य कभी एक पल भी विलम्ब से न ही उदय होता और न ही अस्त होता है।

5. कोई अपेक्षा नहीं (No Expectation) – सूर्य इतना महान् कार्य करने पर किसी से भी कोई अपेक्षा नहीं करता। जैसे बिजली विभाग बिजली का बिल और दूरभाष विनिमय विभाग फोन एवं मोबाइल के बिल प्रति मास लेते हैं। परन्तु सूर्य किसी से भी कोई बिल नहीं लेता है। यदि सूर्य न हो तो हमारा अस्तित्व नहीं रह सकता। हमारी आँखें सूर्य के प्रकाश से ही देख पाती हैं। स्वयं का कोई प्रकाश नहीं है।

6. कोई पक्षपात नहीं (No Discrimination) – सूर्य अपना लाभ प्रत्येक प्राणी को प्रदान करता है चाहे कोई धनी हो या निर्धन। जैसे परमात्मा

किसी के साथ पक्षपात नहीं करता उसी प्रकार सूर्य भी किसी के साथ पक्षपात नहीं करता है ।

अतः सूर्य देव हमारे लिये अत्यंत लाभकारी, कल्याणकारी और जीवनदाता है । इसी प्रकार हमें भी सूर्य से शिक्षा ग्रहण करके समूची मानवता का कल्याण करना चाहिए ।

चन्द्रमा हमारे लिये क्या करता है?

1. चन्द्रमा हमें शीतलता प्रदान करता है, उसी प्रकार हम भी संसार को सुख, शांति और आनंद प्रदान करें ।

2. चन्द्रमा सदा मुस्कराता रहता है उसी प्रकार हम भी मुस्कराते रहें क्योंकि यदि आप हँसोगे तो सारा संसार आपके साथ हँसेगा और यदि रोओगे तो अकेले ही रोओगे ।

3. चन्द्रमा सौंदर्य का प्रतीक है इसलिये सबको अच्छा लगता है । उसी प्रकार आप भी शुभ कर्म करके चंद्रमा की भाँति सब के आँखों के तारे बन जाओ ।

प्रस्तुत मंत्र में आगे बताया गया है कि संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं और हमें उन्हीं का सत्संग करना चाहिये—

1. दानी की संगति — सदा दानी व्यक्ति का ही सत्संग करें और अपनी यथाशक्ति, पात्रता एवं रुचि के अनुसार अपनी कमाई का कुछ भाग अवश्य दान करना चाहिये जैसे भर्तृहरि लिखते हैं—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्तेतस्य तृतीया गतिर्भवति । —नीति शतक 30

दान, भोग और नाश धन की यही तीन गतियाँ हैं जिसने न किसी को धन दिया हो और न स्वयं भोगा हो उसके धन की तीसरी गति होती है अर्थात् वह नष्ट हो जाता है ।

2. अहिंसक की संगति — हमें सदा अहिंसक व्यक्ति की संगति करनी चाहिये न कि हिंसक की । क्योंकि हिंसक व्यक्ति समाज के लिये कलंक होता है और अहिंसक व्यक्ति समाज के लिये कल्याणकारी होता है । जैसे श्रीकृष्ण की मित्रता और सहयोग से महाभारत के युद्ध में पांडवों ने विजय प्राप्त की

और दुःशासन शकुनि आदि दुष्टों के संग से कौरवों को पराजय का मुंह देखना पड़ा।

3. ज्ञानियों की संगति – हमें सदा ज्ञानियों और विद्वानों की संगति करनी चाहिये न कि मूर्खों और दुष्टों की। क्योंकि विद्वानों की संगति से जीवन सुधरता है और कुसंगति से बिगड़ता है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि विद्वान् कौन है। वस्तुतः वही व्यक्ति विद्वान् होता है जिसमें अहंकार की भावना न हो। जैसे भर्तृहरि लिखते हैं –

यदा किंञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः सम भवम्।

तदा सर्वज्ञोऽस्मि व्यभवदविलप्तं मम मनः।। – नीति शतक-6

मैं अल्पज्ञ था, मदोन्मत्त हाथी की भांति मुझे यह घमंड था कि मैं सर्वज्ञ हूँ। परन्तु जब पंडितों द्वारा मुझे कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ, तब मैंने स्वयं को मूर्ख जाना और मेरा सारा अहंकार ज्वर की भाँति उतर गया।

इस विषय में महर्षि दयानन्द के जीवन की एक घटना प्रस्तुत करना चाहता हूँ। जब वैदिक प्रचार करते हुए महर्षि दयानन्द जेहलम गये थे तो उन दिनों अमीचंद नामक एक व्यक्ति सत्संग में आकर बहुत सुन्दर एवं मधुर भजन गाया करते थे। परन्तु वह दुर्भाग्यवश शराबी व चरित्रहीन था। घर पर वेश्या भी रखी हुई थी और अपनी धर्मपत्नी को छोड़ रखा था। एक दिन अमीचंद मेहता जी ने बहुत ही सुन्दर एवं मधुर भजन गाया। महर्षि दयानन्द और सत्संग के अन्य श्रोताओं को भी मंत्रमुग्ध कर दिया। इस पर स्वामी जी ने कहा–

अमीचन्द हो तो हीरे परन्तु कीचड़ में पड़े हो।

बस फिर क्या था, तीर चल गया, निशाना ठीक बैठ गया। उसी दिन से मेहता अमीचंद का जीवन पलट गया। शराब पीनी छोड़ दी और व्यभिचार को महापाप समझने लगा और वह सचमुच प्रभुभक्त बन गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि दयानन्द के एक वाक्य ने ही शराबी एवं व्यभिचारी अमीचंद को भक्त एवं सदाचारी बनाकर रख दिया। इसलिये

हमें भी सत्संग में अवश्य जाना चाहिये न जाने किसी महात्मा का कोई वाक्य हमारे जीवन में भी कोई क्रांति पैदा कर दे ।

इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि हमें जीवन में आत्मिक विकास के लिये परोपकारी कार्य करते हुए निष्काम भाव से काम करना चाहिये जैसे कि सूर्य व चन्द्रमा करते हैं । निष्काम भाव का एक उत्कृष्ट एवं उज्ज्वल उदाहरण हमें आनन्द स्वामी के जीवन में मिलता है । इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है ।

एक बार मुलतान में प्लेग फैल गई । इस कारण प्रत्येक स्थान पर आर्य समाज के निःस्वार्थ सेवक पहुँच गये । मुलतान में तो प्लेग का इतना जोर था कि नगर के कई भाग प्लेग के रोग के कारण नष्ट हो गये । उस समय आनन्द स्वामी और महात्मा पंडित रलाराम जी आर्य समाज की ओर से काम कर रहे थे । नगर की सारी दिशाएं सूनी थी । यहाँ तक कि पिता पुत्र को, पुत्र पिता को और पति पत्नी आदि को छोड़ भाग गये थे । एक मुहल्ले से कुछ सेवक सूचना लेकर आनन्द स्वामी जी के पास आये कि एक लाला जी को प्लेग हो गई है और घर के सारे लोग भाग गये हैं । जब पं. रलाराम जी ने लाला जी का हाल सुना तो आनन्द स्वामी जी से बोले चलो वहाँ चलें ।

जब वे लाला जी के घर पहुँचे तो देखा कि लाला जी की दशा चिन्ताजनक थी । रलाराम जी को प्लेग के रोगियों को देखते-देखते काफी अनुभव एवं अभ्यास हो चुका था । लाला जी की गिल्टी बहुत पक गई थी और यहाँ तक वह चमक भी रही थी । उसे देखकर रलाराम जी ने कहा–

"ऑप्रेशन के बिना यह व्यक्ति नहीं बचेगा ।" दौड़कर जाओ किसी डॉक्टर को शीघ्र ही बुला लाओ ।

इस पर आनन्द स्वामी ने उत्तर दिया–इस समय डॉक्टर कहाँ से मिलेगा ?

इस पर वे बोले–डॉक्टर नहीं कोई नाई बुलाओ ।

आनन्द स्वामी जी ने कहा–पंडित जी इस समय कोई नाई नहीं मिलेगा । सब लोग तो भाग गये हैं, यहाँ आयेगा कौन ?

वे बोले—“अच्छा भाई घर में ही देखो कहीं कोई चाकू ही मिल जाये ।”

आनन्द स्वामी जी को चाकू भी नहीं मिला। इस पर पंडित जी ने कहा—“अच्छा स्प्रिट तो तुम्हारे पास है । उससे इस गिल्टी को साफ कर दो ।

इसके बाद आनन्द स्वामी ने गिल्टी को साफ कर दिया और पंडित रलाराम ने उसे अपने दांतों से काट डाला ।

यह है निष्काम सेवा का उत्कृष्ट एवं उज्ज्वल उदाहरण। निष्काम सेवा से जो मन को प्रसन्नता मिलती है। उसे वही लोग जानते हैं जो ऐसी सेवा करते हैं ।

हम सबके हृदय में परोपकार और निष्काम सेवा की भावना होनी चाहिए तभी हम सूर्य एवं चन्द्रमा की भांति कल्याणमार्ग के पथिक बन सकते हैं। अतः एक कवि के शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति को अपने हृदय से प्रश्न करना चाहिये—

कभी कुछ काम भी आया किसी आफ़त रसीदे के?
कभी दामन से पीछे जने आँसू आबदीद के?
शरीके दर्दे ग़म बनकर कभी दुःख भी बँटाया है?
पराई आग में पड़कर कभी दिल भी जलाया है?
किसी बेबस की ख़ातिर जान पर सदमा उठाया है?

6. हम सदा प्रसन्न रहें

या तो दीवाना हँसे या तू जिसे तौफ़ीक़ दे ।
वर्ना दुनियाँ में हँस सकता है कौन ? —दाग़ देहलवी

ओ३म् विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्
तथाकरद्वसुपतिर्वसूनां देवां ओहानोऽवसागमिष्ठः ।। -ऋग्वेद 6.52.5

1. विश्वदानीं—हम, 2. सुमनसः—प्रसन्नमन, 3. स्याम—रहे, 4. पश्येम—देखते रहें, 5. नु—और, 6. सूर्यमुच्चरन्तम्—उदय होते हुए सूर्य को, 7. पतिर्वसुनां—प्रभु वैसा करे, 8. देवां—देवो, 9. ओहानो—प्राप्त करने वाले, 10. गमिष्ठः—रक्षण ।

हम सदा आनन्दित और प्रसन्न मन रहें और उदय होते सूर्य को देखते रहें । ऐश्वर्यों का ऐश्वर्याधिपति देवों को प्राप्त कराने वाला, रक्षण शक्ति के साथ आने वालों में सर्वश्रेष्ठ प्रभु वैसा करें ।

1. ओ३म् ! विश्वदानीं सुमनसः स्याम – हम प्यारे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हम सदा फूलों के समान सुप्रसन्न, सुमधुर एवं सुगंधित रहें । सुमनसः का पहला अर्थ है अच्छा मन । हमारा मन सदा शुद्ध, पवित्र, सुष्ठु एवं सुन्दर रहे । हमारा मन कभी भी कु न हो और सदा सु रहे । यदि हमारा मन पवित्र एवं पावन होगा तभी हम जीवन में अच्छे कार्य कर सकते हैं । हम जानते हैं कि निर्विकार मन के संकल्प ही शिव एवं सुन्दर होते हैं । तत्वतः हमारे जीवन की प्रत्येक गति एवं चेष्टा मन के द्वारा ही होती है । मन के निर्देश के बिना न कोई कार्य किया जाता है, न किया जा सकता है । आत्मा के जीवन-व्यापार में सब कुछ कर्ताधर्ता यह मन है । मन को निर्मल बनाने के निमित्त त्रिदोष त्याग करना होगा । पहले चरित्र दोष-दूसरे व्यक्ति का धन-हरण और परस्त्रीगमन । दूसरे व्यसन दोष जुआ, शराब, सिग्रेट, मांस आदि तीसरे स्वभाव दोष-क्रोध, चिड़चिड़ापन आदि । ऐसा करने के उपरांत आपका मन मंदाकिनी समक्ष पावन एवं पवित्र हो जायेगा । मन में उल्लास, उत्साह एवं उत्फुल्लता की वृद्धि होगी । जैसा कि कबीर ने भी कहा है—

कबीरा मनु निरमलु भइआ, जैसा गंगा नीरु ।

पाछे लागो हरि फिरै, कहत कबीर कबीर ।।

(श्रीगुरुग्रंथसाहिब पृ० 1367)

इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है ।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु —यजुर्वेद 34.1

मेरा मन शिवसंकल्पी हो ।

उर्दू शायर के शब्दों में—

सूरज सफर में है, चांद सितारे सफर में हैं ।

जमीन सफर में है और आसमां सफर में है ।।

तस्कीने-दिल के वास्ते हर शै है बेकरार ।

तस्कीने-दिल के वास्ते सारे सफर में हैं ।।

फिर भी यहाँ हर चीज मिलती है ।

पर तस्कीने दिल नहीं मिलता ।।

जर्मन दार्शनिक गेटे ने लिखा है—

He is the happiest, be he king or peasant, who finds peace in his home.

वही सबसे खुश व्यक्ति है चाहे वह राजा या किसान जिसके घर में शांति है ।

सुमनस् का दूसरा अर्थ है सुप्रसन्नता । हम सदा सुप्रसन्न एवं आनंदित रहें । हम कभी भी म्लान खिन्न न रहें । प्रसन्नचित व्यक्ति सूर्य के समान होता है । उसकी किरणें अनेक हृदयों के शोक रूपी अंधकार को दूर कर देती है । प्रसन्नता चंदन की भांति माथे को ठंडक देती है । जिस चेहरे पर मुस्कान नहीं वह उस कली के समान है जो बिना खिले ही मुर्झा जाती है । जैसे एक उर्दू शायर ने लिखा है—

दिल खुश हुआ है मस्जिदें वीराँ को देखकर ।

मेरी तरह ख़ुदा का भी खाना खराब है ।।

इसी प्रकार ऋग्वेद में भी लिखा है–

प्रांची अगाम नृत्ये हसाय

द्रधीव आयुः प्रतरं दधारा । –ऋग्वेद 10.18.3

जो व्यक्ति प्रतिदिन यज्ञ करते हैं वे लम्बी आयु प्राप्त कर मरणानन्तर नृत्य, हास्य आदि के योग्य जीवन को प्राप्त करते हैं । प्रकृति के रमणीक दृश्यों को बार-बार देखने से मन को प्रसन्नता मिलती है । उषा वेला की लालिमा रात को आकाश में छिटके हुए सितारे विभिन्न प्रकार के पुष्प, इन्द्रधनुष, चन्द्रमा की चांदनी, कल-कल नाद करती हुई नदियों को देखकर मन में उल्लास उत्पन्न होता है ।

पांच मुख्य विकारों – काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार को वश में करने से भी मानव को सुख, शांति एवं आनंद की अनुभूति होती है । काम को संयम, क्रोध को शांति, लोभ को संतोष, मोह को वैराग्य और अहंकार को विनम्रता से वश में करना चाहिए । अपने संबंधियों एवं मित्रों की सेवा करो परन्तु उनसे कुछ भी आशा न करो । सदा परमात्मा की रजा में रहो तभी आप सुखी, शांत, संतुष्ट एवं आनंदित रह सकते हैं । इसके विषय में किसी उर्दू शायर ने ठीक ही लिखा है जीना इसको कहते हैं–

काटों से घिरा रहता है चारों तरफ से फूल,

फिर भी खिला ही रहता है, क्या खुशमिज़ाज़ है ।

अरे भाई ! यदि कष्टों में हो, तो भी खुश रहो क्योंकि सदा एक सा समय नहीं रहता ।

फिर बहार आएगी, आलम गुलफ़िशां हो जायेगा ।

खत्म आखिर एक दिन दौरे-ख़िजां हो जायेगा ।।

फिर पतझड़ भी समाप्त हो जायेगा फिर बसंत भी आयेगा । आदमी में सुख व दुःख को सहन करने का गुण होना चाहिये । जैसे एक शायर ने लिखा है–

बहार आये तो गुञ्चे भी मुस्कराते हैं ।

बशर वो क्या जो मुसीबत में मुस्करा न सके ।

दिल दे तो इस मिज़ाज़ का परवरदीगार दे ।
कि रंज की घड़ी भी खुशी में गुजार दे ।।

इसके विषय में आनंद स्वामी के जीवन की एक शिक्षाप्रद घटना आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूँ। यह घटना उस समय की है जब आनंद स्वामी जी का बेटा रणवीर फांसी की कोठरी में था तो उसके सामने वाली कोठरी में एक बंदी युवक रहता था उस पर भी क़त्ल का मुक़द्दमा था। उसने दो क़त्ल किये थे। परन्तु उसे आशा थी कि वह छूट जायेगा। इस कारण वह हर समय गाता रहता था–

तूं बख्श गुनाह हुण मेरे, मैं खादे कुक्कड़ तेरे ।

मुकद्दमा आगे बढ़ा और उसकी अपील अस्वीकार हो गई। इसके बाद जब दूसरे दिन आनंद स्वामी अपने पुत्र रणवीर से मिलने गये तो उन्होंने सामने वाली कोठरी में सफेद केशों वाले एक बूढ़े को चकित और व्याकुल देखा। मृत्यु उसकी आँखों में नृत्य सी करती दिखाई देती थी। आनंद स्वामी जी ने उसकी ओर एक बार देखा और समझा कोई दूसरा बंदी आ गया है। अपने पुत्र रणवीर से पूछा–वह जो बंदी नवयुवक सामने वाली कोठरी में था, कहाँ गया? आनंदस्वामी जी को उसके पुत्र रणबीर ने सामने देखते हुए कहा–

वही तो है इस कोठरी में। कल इसकी अपील अस्वीकार हो गई। तभी से चुप है, चिन्ता में डूबा हुआ और रात ही रात में इसके काले बाल सफेद हो गये हैं। युवक से बूढ़ा बन गया है वह। यह है चिन्ता का परिणाम। अंग्रेज़ी भाषा में एक कहावत है–

When you weep, your troubles heap
When you smile, your troubles reconcile
When you laugh, your troubles are off.

इस प्रकार उत्तम चंद "शरर" ने कितना सुन्दर लिखा है–

अश्क आखिर अश्क है शबनम नहीं है ।
दर्द आखिर दर्द है सरगम नहीं है ।।

उम्र के त्योहार में रोना मना है ।
ज़िन्दगी है ज़िन्दगी मातम नहीं है ।।

यदि हमारा मन सु रहेगा तो हम अच्छे काम करेंगे यदि कु रहेगा तो बुरे काम करेंगे । क्योंकि सु व कु में ही धर्म व अधर्म का सार निहित है । सुमन वाले बनकर ही हम आसक्ति से दूर हटकर भक्ति की ओर आयें और वासना से हटकर उपासना की ओर आयें । सुमन से ही त्याग की भावना का प्रादुर्भाव होता है । यथार्थतः जो सुख त्याग में है वह ग्रहण में नहीं है । इसी कारण इक़बाल ने कितना सुन्दर फरमाया है—

मजनूं ने शहर छोड़ा तो सहरा भी छोड़ दे ।
नज़्ज़ारों की हवस है तू लेला भी छोड़ दे ।।

इसका तीसरा अर्थ है— फूल । जिसका मन सु होता है वह सदा सुमन के समक्ष, सुमधुर एवं सुगंधित होता है । उसके मन में सदा सुगंधि का वास रहता है । इसी कारण वह सदा खिला रहता है जैसे फूल कांटों पे खिलता है और सेज पर मुर्झा जाता है । वैसे ही जीवन में रंगत लाओ जैसे फूल लाता है । मानव जीवन की सुगंधि यश है । यश प्राप्ति तीन बातों से होती है—

1. जीवन की पवित्रता, 2. विपत्तियों को मुस्कान के साथ काटना, 3. कठोर जीवन ।

जैसे मुनिश्री तरुण सागर जी लिखते हैं--

हँसना एक औषधि है । यह औषधि बिना पैसे के मिलती है और इसका कोई साइड इफैक्ट भी नहीं होता । इससे चेहरे पर एक्सरसाइज भी अच्छी हो जाती है । लड़कियों की खूबसूरती का राज भी यही है कि वे पुरुषों से ज्यादा हँसती हैं । हँसी शरीर के लिये पेनकिलर की तरह है । महानगरों में लाफटरक्लब चल रहे हैं । अब एक नई थैरेपी विकसित हो रही है--वह है लॉफटर थैरेपी । हँसी संक्रामक है । आस-पास के लोगों को हँसते देखकर आप भी हँसने लगते हैं । विटामिन की गोलियां असर नहीं कर रही हैं तो हँसिए । पहचान बनानी है तो मुस्कराइये । जिंदादिली से जीना है तो प्लीज कीप स्माइल । —कड़वे प्रवचन (भाग-5, पृ० 7)

जैसे एक उर्दू शायर के शब्दों में—

अपने दुःख में रोने वाले, मुस्कराना सीख ले ।
दूसरों के दर्द में आँसू बहाना सीख ले ।

जो खिलाने में मज़ा है, आप खाने में नहीं
जिन्दगी में तू किसी के, काम आना सीख ले ।
वीर कर वो काम जिससे तू सदा ज़िन्दा रहे
हर किसी को प्यार में अपना बनाना सीख ले ।

इससे ही मानव सुप्रसन्न, संतोषी और गहन बन सकता है ।

2. पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् – इसका अर्थ है कि हमें सदा उदय होते हुए सूर्य के दर्शन करने चाहिये अस्त होते सूर्य के नहीं । उदय होते हुए सूर्य के दर्शन से जहाँ अनेक शारीरिक लाभ होते हैं वहाँ मानसिक उपलब्धियां भी होती हैं ।

3. तथा करद् वसुपतिवर्सूना – वसु नाम है लोक, ऐश्वर्य और प्राण का । प्राण ही जीवन है । यह मानव का सर्वोत्तम धन है इसी कारण प्राणी अपने प्राण को सर्वाधिक प्यार करता है । आदर्श जीवन पद्धति की महिमा को समझने वाले आत्मकामना करते हैं कि प्राणों का प्राणपति वैसी कृपा करे । प्रभु को यहाँ पर प्राणों का प्राणपति के नाम से अभिहित किया गया । यही तो प्रभु प्रेम की पराकाष्ठा है ।

4. ओहन : इसका अर्थ है ऊहापोह करना, जिज्ञासा आदि वैसे इसका भाव देव भी है । वस्तुतः देव नाम है दिव्य गुणों का दिव्य जनों की संगति से दिव्य गुणों की प्राप्ति होती है । जहां पर कोई दिव्य गुण दिखाई दे उसे जीवन में अवश्य धारण करके अपने जीवन में क्रांति लानी चाहिए । जैसे हम तोते से अनासक्ति, कुत्ते से वफादारी, बिल्ली से बिना आहट किये चलने की कला, चोर से सावधानी और डाकू से साहस के दिव्य गुण अपने जीवन में धारण करके अपने जीवन को श्रेष्ठ बना सकते हैं । इस प्रकार श्री राम से मर्यादा, रावण से यज्ञ एवं वेदपाठ, श्री कृष्ण से योगयुक्त जीवन, भीष्म पितामह से प्रतिज्ञा पालन, हनुमान से निभर्यता, आदिशंकराचार्य से ब्रह्मलीनता और महर्षि दयानन्द से वेद-व्याप्ति आदि गुण सीखने चाहिएं । जीवन पद्धति यह है कि दोष देखो अपने और निकाल डालो तथा गुण देखो दूसरे के और अपने अंदर भर डालो । अध्यापक, डॉक्टर व वकील के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति

को किसी दूसरे व्यक्ति के दोष नहीं देखने चाहियें ।

5. भवुः – इसका अर्थ है रक्षा, गति बोध एवं क्रांति । ईश्वर परायणता और धर्माचरण से जीवन रक्षा होती है । नास्तिकता एवं अधर्माचरण से जीवन नष्ट-भ्रष्ट होता है । ईश्वर परायणता एवं धर्माचरण से सुरक्षित जीवन सच्चे अर्थों में प्रगति के सुपथ पर अग्रसर होता है ।

6. अवसागमिष्ठ – अवस् का अर्थ है ढाल । किसी भी स्थान पर जाओ ढाल लेकर जाओ ताकि कोई व्यक्ति चोट न कर सके । वह ढाल है चरित्र की । जैसे स्वामी विवेकानंद जब अमेरिका में गये वह चरित्र की ढाल लेकर गये थे । एक बार की बात है कि कुछ अमेरिकी पादरी स्वामी विवेकानंद के प्रवचन सुनकर ईर्ष्या, द्वेष में जलने लगे । उन्होंने स्वामी विवेकानंद को बदनाम करने के लिए एक षडयंत्र रचा । एक अत्यंत सुंदर लड़की को धन का लालच देकर सिखाया कि तुम ऐसी शरारत करना, हम फोटो ले लेंगे और उसे समाचार पत्रों में छपवा देंगे कि स्वामी विवेकानंद एक बदमाश व्यक्ति है । अतः षडयंत्र के अनुसार एक दिन स्वामी विवेकानंद एक उद्यान में एक बैंच पर ध्यान में बैठे हुये थे कि वह अत्यंत सुंदर लड़की स्वामी विवेकानंद जी की गोद में जाकर बैठ गई और उन्ही का मुख चूमने लगी । पादरियों ने इस अश्लील दृश्य का फोटो ले लिया । उस लड़की ने स्वामी विवेकानंद जी से पूछा–

जब मैंने आपकी गोदी में बैठकर आपको चूमा था तो आपको कैसा लगा ?

स्वामी विवेकानंद जी ने उत्तर दिया–

बेटी ! मैं ब्रह्मचारी हूँ । मेरी बेटी नहीं है । जब तुम गोदी में बैठकर मुझे चूम रही थी तो मुझे ऐसा लगा कि जैसा मैंने कभी-कभी बच्चियों को अपने अपने पिता को चूमते देखा है ।

स्वामी विवेकानंद के ये शब्द सुनकर वह लड़की फूट-फूट कर रोने लगी उसने स्वामी विवेकानंद जी से कहा–

मैं पापिन हूँ, मैं पापिन हूँ ।

स्वामी विवेकानन्द ने उत्तर दिया–

बेटी ! कैसे ? तुम पापिन कैसे हो ।

उस लड़की ने उत्तर दिया।

मैं तो आपके विरुद्ध षडयंत्र करने को आई थी और वे फोटो भी ले गये।

स्वामी विवेकानन्द ने उत्तर दिया–

दुनियाँ ले जाओ फोटो। दुनियाँ चाहे हज़ार फोटो ले जाओ। विवेकानंद को दाग़ नहीं लग सकता। वह चरित्र की ढाल लेकर आया है।

दूसरे दिन उस लड़की ने उत्तर दिया–

विवेकानंद तो ईसा से भी महान् हैं।

अतः यदि आप का चरित्र महान् है तो संसार आपके आगे झुक जायेगा जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

निर्धन धनवान से डरता है।

निर्बल बलवान से डरता है।

मूर्ख विद्वान् से डरता है।

परन्तु चरित्रवान से ये तीनों डरते हैं।

अतः इतना ही कहना काफी होगा कि जीने को सभी जीते हैं। कैसे जीना है ये बिरले ही जानते हैं। वस्तुतः मानव जीवन पद्धति के मुख्य चार सिद्धान्त हैं–सत्य, शिव, सुन्दर एवं शाश्वत।

7. मधुरवाणी

कोयल काको देत है, कागा कासों लेत।
तुलसी मीठे वचन ते, जग अपनो कर लेत।।
तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, तजदे वचन कठोर।। —तुलसीदास

ओ३म् सुक्तमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।।

—ऋग्वेद 10.71.2

जैसे छलनी में छानकर सत्तू को साफ किया जाता है, उसी प्रकार जिस विषय में धीर तथा बुद्धिमान लोग ज्ञान रूपी छलनी द्वारा वाणी को शुद्ध करके प्रयोग करते हैं। वहाँ हितैषी विद्वान् लोग हित की बातों को समझते हैं। उनकी वाणी में कल्याणकारी लक्ष्मी निवास करती है। जैसे ऋग्वेद में लिखा है—

मा नो निदे च वक्तवयो रन्धीरराव्णे।
त्वे अपि क्रतुर्मम। —ऋग्वेद 7.31.5

हे मनुष्यों! तुम कभी किसी को कड़वे वचन मत बोलना, किसी की निन्दा न करना, कृतघ्न न बनना। दुःखी व्यक्तियों की सहायता करते रहना। तुम्हारा प्रत्येक शुभ कार्य परमात्मा को समर्पित हो।

मधुर वचन से सभी को सुख मिलता है, सभी प्रसन्न एवं संतुष्ट होते हैं। परन्तु इसके विपरीत कड़वे वचनों से हृदय में कांटे चुभ जाते हैं। मीठा बोल वशीकरण मंत्र के समान होता है। अतः व्यक्ति को सदा मधुरभाषी होना चाहिए। क्योंकि सबके साथ मधुरता का व्यवहार करने से चतुर्दिक सुख, शांति एवं आनन्द फैलता है। आचार्य सुधांशु जी महाराज लिखते हैं—

जब भी बोलो आपकी वाणी से आपका ज्ञान ऐसे ही झरना चाहिए जैसे किसी पहाड़ को तोड़कर झरना बहता है। लोग कहें कि आपकी एक-एक बात लाख की है, मुँह से फूल झरते हों। जहाँ वाणी में ज्ञान हो और प्रसन्नता से मुस्कराये, शांति और शीतलता का मेल हो जायेगा तो इसे वाणी का तप कहा जाएगा। —श्रीमद्भगवद्गीता (भाग-3, पृष्ठ-418)

वाणी भी चार प्रकार की होती है जिसका वर्णन इस प्रकार किया जाता है–

1. वैखरी– जो मुँह से बोली और कानों से सुनी जाती है जिसे शब्द कहते हैं ।

2. मध्यमा– जो संकेतों से, मुखाकृति से, भावभंगिमा से और आँखों से कही जाती है ।

3. पश्यती– जो मन से निकलती है और मन ही उसे सुन सकता है इसको विचार कहा जाता है ।

4. परा– यह इच्छा, निश्चय, प्रेरणा, शाप, वरदान आदि के रूप में अंतःकरण से निकलती है । इसको संकल्प कहते हैं ।

वस्तुतः वाणी एवं पाणि मानव को जानवरों से अलग करती है क्योंकि जानवरों के पास न वाणी होती है और न हाथ । प्राचीन काल से वाणी की बड़ी महिमा मानी गई है । एक दंतकथा प्रचलित है कि एक बार वाणी और मन में विवाद छिड़ गया और वाणी ने कहा वह श्रेष्ठ है और मन ने कहा वह श्रेष्ठ है । यह विवाद जिसने सुना उसने कहा कि मन का फैसला ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती कर सकती है । अतः दोनों उसके पास जायें और फैसला करवा लें । मन और वाणी सरस्वती के पास पहुँचे और समस्या उनके सामने रखी और पूछा–

देवी बताओ मन श्रेष्ठ है अथवा वाणी श्रेष्ठ है ।

सरस्वती मुस्कराई और बोली–इसमें क्या बात है, अरे ! मन श्रेष्ठ मनः श्रेष्ठ न संशयम् ।

मन श्रेष्ठ है, मन श्रेष्ठ है इसमें कोई संदेह की बात नहीं है ।

सरस्वती के निर्णय से वाणी दुःखी हुई और वहाँ से जाने लगी । वाणी को जाते देखकर सरस्वती ने मुस्कराते हुए रोका और दोनों को लक्ष्य करके कहा–मन श्रेष्ठ है परन्तु वाक् तत्पश्चात् सरस्वती अर्थात् वाणी तो सरस्वती का ही रूप हैं इस प्रकार वाणी का महत्व सरस्वती ने बतला दिया । हम देखते

हैं कि संध्या के आचमन मंत्र में एवं यज्ञ से पहले के अंगस्पर्श मंत्र में वाणी का उल्लेख आता है। इसी प्रकार गीता में भी श्रीकृष्ण ने वाणी के तप के विषय में लिखा है–

अनुद्वेगेकरम् वाकयम् सत्यम् प्रिय हितम् च यत।
स्वाध्याय अभ्यसनम् च एव वाङ्मयम् तपः उच्यते।। गीता 17.15
सुखन (वचन) वो जो सच्चा हो और बे-खरोश (व उद्वेग कारक),
मफ़ीद-ए-खलनायक (हितकर) हो (प्रिय) फ़रदोस-ए-गोश।
मुकद्दम कुतन (परम आदरणीय ग्रंथ) की तलावत
(स्वाध्याय) मदान (सदन),
जबाँ (वाणी) की रियातज़त (तप) इसी का नाम।।

जो उद्वेग को न करने वाला, सत्य, प्रिय, एवं हितकारक भाषण है वेदों के पठन एवं प्रभु के नाम का अभ्यास है। वही वाणी का तप कहा जाता है। मानव जीवन में वाणी का अत्यधिक महत्व है। इनके वशीकार से मनुष्य बहुत ऊँचा उठता है। जैसे रहीम के शब्दों में–

रसना के जीते बिना कोई न जितेन्द्रिय होय।
रसनेन्द्रियजित जो पुरुष, सर्वन्द्रियजित होय।।

अतः वाणी के मुख्य दोषों का वर्णन इस प्रकार किया जाता है।

1. कड़वी वाणी – अप्रिय सत्य होते हुए भी नहीं बोलना चाहिये। सत्तू इतना मोटा पिसा हो कि वह खाने में न आये, उसी प्रकार वाणी भी उचित सावधानी के साथ यदि नियोजित नहीं की गई हो तो वह सत्य होते हुए भी लड़ाई का कारण होती है। जैसे अंधे को अंधा कहना लड़ाई मोल लेना है। अपितु उसे सूरदास या प्रज्ञाचक्षु पुकारना ही ठीक है। अतः जो व्यक्ति सोच-समझकर बोलता है उसका सम्मान बढ़ता है और जो सोच-समझकर नहीं बोलता है वही पछताता है। जैसे आचार्य चाणक्य लिखते हैं–

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमंन्न सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्न-संख्या विधीयते। –चाणक्यनीति 14.1

पृथ्वी पर तीन ही रत्न हैं–जल, अन्न और सुभाषित। परन्तु मूर्खों ने पत्थर के टुकड़ों का नाम रत्न रखा हुआ है।

2. अधिक बोलना – अधिक बोलना भी वाणी का एक मुख्य दोष माना गया है। व्यक्ति को चाहिये कि जितना आवश्यक हो, उतना ही बोले। व्यर्थ की बातें न करें क्योंकि जो व्यक्ति अधिक बोलता है, वस्तुतः वह व्यर्थ भी बोलता है और वह ग़लत भी बोलता है। वह अवांछित शब्दों का भी प्रयोग करता है और परिणामस्वरूप उसे बाद में अपमानित भी होना पड़ता है। जैसे मुनि श्री तरुण सागर कितना सुन्दर लिखते हैं–

वाणी में ही ज़हर है और वाणी में ही अमृत है। कोयल अपने वाकमाधुर्य से सभी को प्रिय लगती है और काग की स्थिति इससे भिन्न है।

वाणी में जादू भरा आकर्षण हैं स्वामी विवेकानन्द जब विश्व धर्म सम्मेलन में बोलने को खड़े हुए तो वहाँ अशांत वातावरण था। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा, "सिस्टर एण्ड ब्रदर ऑफ अमरीका"। सब शांत हो गये, क्योंकि यह नई शुरुआत थी। इससे पूर्व वक्ता "लेडीज एण्ड जेन्ट्स" कहकर अपनी बात शुरू कर रहे थे। वाणी में विवेक चाहिए। विवेक है तो आप खुद ही विवेकानन्द हैं। बन्दूक से निकली गोली और मुख से निकली गाली वापिस नहीं आती। इसलिए सोच-समझकर बोलो। अपनी कद्र करना चाहते हो, तो अपनी वाणी की कद्र करना सीखो। कम बोलो-काम का बोलो –कड़वे प्रवचन (भाग-5 पृ० 20)

बोली तो अनमोल है जो कोई जाने बोल।
हिये तराजू तौलि, तन मुख बाहरे खोल।।

3. गोपनीयता का अभाव – वाणी में गोपनीयता का अभाव भी एक मुख्य दोष है क्योंकि कई बार कोई बात कहने से समस्या का समाधान होता है और कई बार कोई बात छुपाने से समस्या का समाधान होता है। क्या प्रकट करना है और क्या छिपाना है यह व्यक्ति की सूझबूझ पर

आधारित है । जैसे कि एक संस्कृत के कवि ने कहा है–

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।

वचनं चापमानं च मतिमानम् न प्रकाशयते ।।

बुद्धिमान व्यक्तियों को चाहिये कि आर्थिक हानि, मानसिक ताप, परिवार के किसी व्यक्ति की चरित्रहीनता, स्वयं ठगा जाना और अपमान– इन बातों को किसी को नहीं बताना चाहिए जैसे किसी स्त्री का पति व्याभिचारी है तो क्या अपने पति की इस बात का प्रचार करना उचित होगा? कदापि नहीं । उसे समझाबुझा कर रास्ते पर लाना ही उचित होगा ।

4. आत्मश्लाघा – कई व्यक्तियों को अपनी श्लाघा स्वयं करने की आदत होती है । परन्तु प्रशंसा स्वयं नहीं अपितु दूसरे प्रशंसा करें । स्वयं की प्रशंसा करना तो अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना होता है जोकि शोभनीय नहीं है ।

5. वचन की पूर्ति न करना – मनुष्य को चाहिये कि सोच-समझकर वचन दे । तभी वचन दे यदि उसको निभा सकता है, नहीं तो अपनी असमर्थता व्यक्त कर दे । इससे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी । जैसे महर्षि दयानंद लिखते हैं–

सदा सत्य भाषण और सत्य प्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिए ।

–सत्यार्थ प्रकाश (दूसरा समुल्लास)

6. निन्दा एवं अपमान करना – व्यक्ति दूसरे के क्रोध से बचने के लिये तो उसके सामने उनकी निन्दा, अपमान, उपहास नहीं करते, अपितु पीठ पीछे करते हैं । समाज में इस प्रकार की प्रवृत्ति को रोकना अत्यंत कठिन होता है । व्यक्ति प्रायः अन्य व्यक्तियों के दोष देखता है परन्तु अपने दोष दिखाई नहीं देते । अतः हमें दूसरे के गुण और अपने दोष ही देखने चाहिए ।

एक बार की बात है कि एक राजा के दरबार में एक चित्रकार आया। उसने एक चित्र राजा को प्रस्तुत किया। यह चित्र अत्यंत परिश्रम से तैयार किया गया था। राजा ने मंत्रियों को बुलाकर आज्ञा दी कि इस चित्र में जो कमी हो वह बताएं। दरबारियों ने कमियां बतानी शुरू कर दी। सबने कोई न कोई कमी बताई। अब राजा ने उन्हें आज्ञा दी आपमें से कोई ऐसा चित्र बनाकर दिखाए। परन्तु कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं कर सका। जैसे संस्कृत कवि के शब्दों में –

भ्रमराः मधुमिच्छिन्त व्रणमिच्छिन्त मक्षिकाः।
सज्जनाः गुणमिच्छिन्त दोषमिच्छिन्त पामराः।।

भंवरे शब्द की इच्छा करते है, मक्खियां घाव की इच्छा करती हैं, सज्जन पुरुष गुणों की इच्छा करते हैं और नीच पुरुष दोषों को देखते हैं। कुछ व्यक्ति दूसरों की केवल बुराई ही देखते हैं न कि अच्छाई जैसे एक कवि के शब्दों में –

भला-बुरा न कोई रूप से कहाता है।
नजर का भेद ही गुण-दोष सब दिखाता है।।
कोई देखता है कीचड़ में भी कमल की कली।
किसी को चांद में भी दाग़ नज़र आता है।।

व्यक्ति को अपने दोष देखने अत्यंत कठिन होते हैं, परन्तु दूसरों के दोषों को देखना आसान होता है, जब कोई व्यक्ति अपने दोषों को देखेगा तो अन्य व्यक्तियों के दोष उसे दिखाई ही नहीं देंगे। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में –

औरों के हम दोष न देखें अपने दोष विचारें।
निन्दा करें न कभी किसी की यही एक गुणधारें।।

7. झूठ बोलना – मनु जी महाराज लिखते हैं –

सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात नब्रूयातसत्यम् अप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयाद् एष धर्मः सनातनः।। –मनुस्मृति 4.138

यह सनातन धर्म है कि सत्य बोलना चाहिये, परन्तु सत्य प्रिय होना चाहिए, अप्रिय सत्य बोलना उचित नहीं है। परन्तु प्रिय झूठ कभी भी नहीं बोलना चाहिए।

जहाँ तक हो सके सदा सत्य ही बोलना चाहिये परन्तु कई बार मजबूरी में यदि झूठ बोलना पड़े तो वह बोलना भी पड़ता है जैसे रोगी मरणासन्न है परन्तु डॉ० आकर उसे सांत्वना देता है कि चिन्ता मत करो। आप अच्छे हो जाओगे। परन्तु वह जानता है कि रोगी बचेगा नहीं। क्या रोगी को उस समय यह कहना उचित है कि आप मर जाओगे कदापि नहीं। यह है तो झूठ परन्तु परिस्थितियों के अनुकूल सत्य ही है।

अधिकतर व्यापारी, प्रशासक, वकील प्रायः झूठ बोलते हैं मैं तो यहां तक कहता हूं कि वकील अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए कोर्टों में सच को झूठ और झूठ को सच करने में लगे रहते हैं। यदि काम न करना हो कई व्यक्ति बहानेबाजी भी करते हैं। परन्तु बहानेबाजी और झूठ में कोई विशेष अंतर नहीं है। एक झूठ को छुपाने के लिये सैंकड़ों झूठ बोलने पड़ते हैं झूठ फिर भी नहीं छिपता। अतः जहाँ तक हो सदा सत्य बोलना चाहिए।

8. गालियां देना – गालियां देना भी वाणी का एक मुख्य दोष है। मनुष्य क्रोध में आकर गालियां देता है। वस्तुतः गाली क्रोध का प्रदर्शन मात्र है। बच्चों एवं अनपढ़ों का तो क्या कहना बड़े-बड़े शिक्षित मनुष्य भी गालियां देते हैं। यदि ऐसा करने का स्वभाव पड़ जाये तो मनुष्य ऐसे गालियां देता है कि उसे कुछ ध्यान नहीं रहता। कई बार दूसरा व्यक्ति बुरा मान जाता है और लड़ाई-झगड़ा भी हो जाता है। परन्तु उत्तम पुरुष गाली का उत्तर गाली से न देकर मौन धारण कर लेते हैं जैसे कबीर के शब्दों में–

आवत गाली एक है उलटत होत अनेक।
कहे कबीर न उलटिये, वाहि एक की एक।।

9. आगे कुछ कहना और पीछे कुछ कहना – कई बार ऐसा हो जाता है कि व्यक्ति मन में कुछ बात रखता है और बाहर कुछ कहता है। इसे राजयिक वार्ता के नाम से पुकारा जाता है। कई बार इसके बिना काम भी नहीं चलता है। अप्रिय सत्य कहने से कई बार व्यक्ति अन्य ढंग से अपनी बात को कह जाता है। क्रोध से बचने के लिये भी कई बार ऐसा करना पड़ता है। परन्तु इस दोष से वह मौन रहे। मन, वाणी एवं शरीर की एकता आत्मा का महान् लक्षण होता है।

10. अश्लीलता – कई व्यक्तियों का स्वभाव होता है कि वे प्रायः अश्लील बातें करते रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों की तान केवल मलेन्द्रिय एवं मूत्रेन्द्रिय पर ही टूटती है। ऐसे व्यक्ति अत्यधिक कामुक होते हैं जिसके कारण वे अश्लील एवं नग्न वार्तालाप ही करते हैं। परन्तु ऐसी वाणी समाज के व्यक्तियों के लिए हानिप्रद होती है। विशेषतः बच्चों पर इनका कुप्रभाव अतिशीघ्र पड़ता है।

अतः वाणी का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है क्योंकि संसार के लगभग 90% झगड़े वाणी के दुरुपयोग से ही होते हैं। इसके विषय में एक प्रेरक प्रसंग इस प्रकार है कि एक गुरु के आश्रम में 5 शिष्य शिक्षा प्राप्त करते थे। वे सदा एक-दूसरे को भला-बुरा कहते रहते थे। एक दिन गुरु जी ने आदेश दिया कि मुझे आश्रम के लिए एक मुख्य शिष्य बनाना है। शिष्यों को कहा कि मैं आप से एक प्रश्न पूछूँगा जिस व्यक्ति का उत्तर सही होगा उसे ही इस आश्रम का मुख्य शिष्य बनाया जायेगा। सारे शिष्यों ने कहा आप प्रश्न कीजिए। गुरुजी ने पहले शिष्य से पूछा कि संसार में सबसे अधिक मिठास किस में होती है। उसने उत्तर दिया– गन्ने में, दूसरे शिष्य ने कहा–गुड़ में, तीसरे शिष्य ने कहा–शक्कर में, चौथे ने कहा–मिश्री में और पांचवे ने कहा–शहद में

सब से अधिक मिठास होती है ।

परन्तु गुरु किसी भी शिष्य की बात से सहमत नहीं हुए और गुरुजी ने उत्तर दिया—संसार में सबसे अधिक मिठास वाणी में होती है जिसके सदुपयोग से शत्रु भी मित्र बन जाता है । जैसे स्वामी स्वरूपानंद जी के शब्दों में—

कड़वी वाणी से तुरंत, लगे जगत् में आग ।
एक मोर की कुहक है, एक मुर्गे की बांग ।
एक मुर्गे की बांग, सियार वन में चिल्लावे ।
गधे स्वान की वाणी, नहीं किसी को भावे ।
कहे स्वरूपानंद, दुःखी हो जाते प्राणी ।
जरा कोई कह जाय किसी से कड़वी वाणी ।

वाणी के मुख्य दोषों का वर्णन उपरलिखित शब्दों में किया जा चुका है । परन्तु मनुजी महाराज ने इसके मुख्य दोषों का वर्णन इस प्रकार किया है—

पारुष्यमनृतं चैव, पैशुन्यं चापि सर्वशः ।
असंबद्ध प्रलापश्च, वाङ्मय स्याच्युत विधिम ।। —मनुस्मृति 12.6

कठोरता, झूठ बोलना, पर-निद्रा एवं असंबद्ध भाषण—ये वाणी के चार अशुभ कर्म है । इसलिये अथर्ववेद में लिखा है—

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि —अथर्व 1.34.2

मेरी जिह्वा में मधुरता हो, जिह्वा की जड़ में मधु की अधिकता हो । हे मधुरता ! तुम मेरे व्यवहार में निश्चय रहो और मेरे चित्त में रहो । जैसे एक अंगेज़ी कवि के शब्दों में—

Sweet be my home.
Sweet be my family.
Sweet be my company.
Sweet be my society.
Sweet be my life.

मधुर हो मेरा घर,

मधुर हो मेरा परिवार,

मधुर हो मेरी संगति,

मधुर हो मेरा समाज,

मधुर हो मेरा जीवन ।

8. उपास्यदेव

हँस के दुनियाँ में मरा कोई, तो कोई रोके मरा ।
ज़िन्दगी पाई उसने जो कुछ होके मरा ।।
जी उठा मरने से वह जिसकी प्रभु पर नज़र ।
जिसने दुनियाँ ही को पाया वह सब खाके मरा ।।

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ।।

ऋग्वेद 1.1.1

विश्व विधाता को अपना आत्मसमर्पण कर जाऊँ ।
जिसने यह ब्रह्माण्ड रचाया उसकी गाथा हर पल गाऊँ ।

अग्निमीळे - स्तुति करना, पुरोहितं-प्राचीनतम, यज्ञस्य-यश, प्रकाशक, ऋत्विजम्-सब ऋतु रचक, होतारं-महादानी, रत्नधातमम्-रत्न निर्माता ।

मैं उस प्रभु की जो कि संसार के अनादि यज्ञ-प्रकाशक, सब ऋतुरचक, महादानी, रत्ननिर्मात्ता, सब अग्रणीय नेता की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करता हूँ । वही मेरा एक मात्र उपास्य देव है ।

ऋग्वेद का सर्वप्रथम सूक्त आग्नेय है और इसका देवता वर्ण्य (शीर्षक विषय) अग्नि है । इसका ऋषि (मंत्र दृष्टा) मधुछन्दा है । इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋग्वेद का अग्नि प्रादुर्भाव शब्द द्युलोक से हुआ । अग्नि शब्द के अनेकों अर्थ हैं जैसे—भौतिक अग्नि, अंतरिक्ष अग्नि, द्युलोक अग्नि आदि ।

संसार के सब कार्य अग्नि से होते हैं यदि सूर्य न हो तो संसार नहीं चल सकता है । अतः संसार में जितने भी रंग हैं वे भी सूर्य के कारण हैं । जैसे उद्यानों में रंग-बिरंगे फूल भी सूर्य के कारण ही खिलते हैं यदि सूर्य न हो तो ये नहीं खिल सकते । इसी प्रकार यदि शरीर में अग्नि न हो तो शरीर नहीं चल सकता । हमारे शरीर में तीन प्रकार की अग्नियां हैं—जठराग्नि, हृदयस्थित अग्नि और मुखाग्नि अग्नि । इसके कारण ही हमारा शरीर जीवित रहता है । जैसे श्रीगुरुग्रंथसाहिब में महात्मा पीपा जी लिखते हैं—

यथा ब्रह्माण्डे तथा पिंडे —पृष्ठ 695

जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वही सूक्ष्म रूप में हमारे शरीर में है। जैसे पांच तत्व पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि और आकाश सारे ब्रह्माण्ड में है वहीं सूक्ष्म रूप से हमारे शरीर में है जिनके कारण हम जीवित हैं। जैसे आँखें सूर्य का, मन चन्द्रमा का, नासिका पृथ्वी का, जीभ जल का, कान (आकाश) शब्द का और त्वचा वायु का प्रतीक है।

इसका एक अर्थ प्रभु भी है जो हम सबको आगे ले जाने वाले हैं और सबके नेता हैं। भौतिक अग्नि प्रकाशक और शोधक हैं। शोधक व प्रकाशक होने से प्रभु का नाम भी अग्नि है। यज्ञ में स्वस्तिवाचन का यह सर्वप्रथम मंत्र है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रभु के प्रति आत्म-समर्पण करना ही जीवन-प्रगति का मूलमंत्र है। अग्नि की प्रार्थना परिस्थितियों में सर्वथा परिवर्तन कर देती है क्योंकि प्रार्थना उत्तम विश्वास उत्पन्न करती है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि सच्ची प्रार्थना से कठिनाई में भी सहायता मिलती है। प्रार्थना हमें कठिनाई में सामना करने की शक्ति ही नहीं देती अपितु सुख एवं शान्ति भी प्रदान करती है। यह मानव को आगे बढ़ने एवं सफल होने के नवीन मार्ग भी दिखाती है और इसी कारण मानव अपने दिल की गहराई में जैसा विचार रखता है, वैसा ही बनता है।

अग्नि का दूसरा अर्थ है प्रकाश देना। मैं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ूंगा यही मेरे जीवन का मूल मंत्र होना चाहिए। मेरे जीवन का एक भी क्षण व्यर्थ न जाये। आगे बढ़ना ही अग्नि बनना है और अज्ञान रूपी अंधकार को भगाना है। इसी कारण शतपथब्राह्मण में लिखा है–

ओम् असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमयेति।

–बृहदारण्यकोपनिषद् (1.3.28)

हे प्रभु! मुझे असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, और मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।

अग्नि का तीसरा अर्थ है पापों का नाश करना। पापों का नाश करके

ही हम अपना और समाज का कल्याण कर सकते हैं। जैसे यजुर्वेद में लिखा है–

ओम् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्नऽआसुव।।

–यजु. 30.3

हे प्रभु! आप कृपया हमारे सारे दुर्गुण, दोष, व्यसन और दुःखों को दूर कीजिये और हमें कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ दीजिये।

इसके अतिरिक्त महर्षि यास्क ने अपने ग्रंथ निरुक्त में अग्नि शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है।

1. अंगं नयति सभममानः – प्रत्येक वस्तु की ओर अग्रसर होता हुआ उसके शरीर को भी आत्मसात् कर लेती है।

2. ओम् गुणीः भवति – अग्नि सबसे अग्रणी होती है वस्तुतः इसके मध्य में ऊर्जा पैदा होती है और जो भी पदार्थ उसमें डाले जाते हैं उन्हें अग्नि आत्मसात् कर लेती है। यही कारण है कि सभी यंत्रों का इसमें प्रयोग होता है।

अग्र का गुण यह है कि यज्ञ में सर्वप्रथम अग्नि को ही स्थापित किया जाता है। अतः यह नेता है।

मैकडॉनल ने अग्नि की व्युत्पत्ति अज् धातु से स्वीकार की है जिसका भाव होता है गति।

इसी प्रकार यूनानी और लैटिन भाषाओं में ऐगो व ऐगो शब्द अज् धातु के समानार्थ होते हैं।

हम देखते हैं कि मानव के पांच तत्वों में एक अग्नि है। अग्नि पूजा का महत्व प्रत्येक क्षेत्र में है जैसे विवाह जैसे शुभ संस्कार और यज्ञ के समय अग्नि की साक्षी में पढ़े जाने वाले मंत्र इसकी प्रतिष्ठा स्थापित करते हैं।

3. पुरोहित – प्रभु इस ब्रह्माण्ड में प्राचीनत्तम हैं अतः इस सृष्टि से पूर्व भी उसका अस्तित्व था और प्रलय उपरांत भी रहेगा। वस्तुतः सृष्टि में केवल परमात्मा, आत्मा, प्रकृति और वेद अनादि हैं और इनके अतिरिक्त सब कुछ

नाशवान्, क्षणभंगुर एवं परिवर्तनशील है ।

4. यज्ञस्य – संसार के सारे यज्ञ का प्रकाश प्रभु है । सूर्य, चन्द्र आदि सृष्टि के आरंभ से ही नियमित रूप से समय पर अपनी गति कर रहे हैं । परमात्मा सर्वशक्तिमान होने के कारण सृष्टि के भीतर का निर्माण करते हैं और मानव बाहर का । जैसे एक उर्दू शायर ने कितना सुन्दर लिखा है–

हर एक बर्ग कायल है अजमत का तेरी
हर एक गुल में तुमको खिला देखते हैं ।।
चमकता सितारों में है नूर तेरा ।
महो-खुर में तेरी ज़िया देखते हैं ।।

5. देवमृत्विजम् – संसार की सब ऋतुओं के रचयिता प्रभु ही हैं जैसे समय-समय पर हमारे देश में छः ऋतुएं होती हैं ।

6. होतारम् – प्रभु सब प्रकार के अलौकिक और लौकिक सुख का दाता है वे महादानी हैं क्योंकि वे देते बहुत हैं परन्तु इसके बदले में कुछ भी नहीं लेते हैं । जैसे कबीर के शब्दों में–

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागे है मेरा ।।

वस्तुतः भौतिक पदार्थों में क्षणिक सुख तो है परन्तु शांति व आनन्द नहीं । आनन्द केवल परमात्मा में ही है । इस कारण आनन्द की खोज में प्रभुप्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए । इसके विषय में एक शिक्षाप्रद कहानी इस प्रकार प्रस्तुत की जाती है ।

एक कुत्ता कई दिन से भूखा था । वह भोजन की खोज में घूमता हुआ एक नदी के तट पर पहुँचा । उसने वहाँ पहुँच कर पत्तों के बिना एक वृक्ष देखा । उस वृक्ष पर एक रोटी लटक रही थी । वृक्ष एवं रोटी का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ रहा था । कुत्ते ने पानी की ओर देखकर समझा कि रोटी पानी में है । अतः उसने पानी में रोटी खाने के लिए छलाँग लगा दी । परन्तु जब पानी हिला रोटी आगे बढ़ती हुई मालूम हुई, वह और आगे बढ़ा रोटी भी आगे ही

आगे बढ़ती चली गई । अंत में कुत्ता मंझदार में पहुँचकर डूबकर मर गया ।

इसी प्रकार मानव भी जन्म-जन्म से आनन्द की प्यास जो हृदय में लगी है उसको खोजता फिरता है । सोचता है जिसके पास धन है, वही सुखी है और धन को पाने के लिये पानी में कुत्ते की भांति छलांग लगा देता है किन्तु आनन्द नहीं मिलता । आनन्द की रोटी आगे चली जाती है । मानव सोचता है कि विवाह में सुख है पकी पकाई रोटी मिल जाती है, सुख व शांति मिल जाती है इस कारण विवाह बंधन में बंध जाता है, फिर भी सुख नहीं मिलता क्योंकि आनन्द केवल परमात्मा में ही है और परमात्मा ही आनन्द का पर्यायवाची शब्द है ।

इसी प्रकार संतान, मान-सम्मान, शासन, सम्पत्ति, मकान आदि में कहीं भी आनन्द नहीं है । यदि कुत्ते में बुद्धि होती तो वह पानी में छलांग लगाने की अपेक्षा वृक्ष पर चढ़ गया होता तो उसे अवश्य रोटी मिल जाती । क्योंकि आनन्द की रोटी नीचे नहीं ऊपर है । सब भोगों के पाने का नाम आसक्ति है । भोगों को छोड़ने का नाम भक्ति और भोग रहित होना समाधि है ।

7. रत्नधातमम् – संसार के सब रत्नों के निर्माता प्रभु ही है । वे सब रत्नों की खान भी हैं । सब आत्मिक और भौतिक रत्नों के धारक प्रभु ही हैं । जैसे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, पवन, हीरे, जवाहरात आदि के निर्मात्ता होने के कारण ही प्रभु को रत्नधातमम् कहा गया है ।

9. यज्ञसंस्कृति

चाहे अमीर है कोई, चाहे ग़रीब है ।
जो नित्य यज्ञ करता है, वह ख़ुशनसीब है ।।
हम सब में रहे, सर्वदा यज्ञीय भावना ।
''जख़्मी'' की सच्चे दिल से यह श्रेष्ठ कामना ।। —जख्मी
होती है पूर्ण कामना, महान् यज्ञ से ।
होता है सारे विश्व का, कल्याण यज्ञ से ।।

ओ३म् यत्पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत ।
अस्ति नु तस्माद् ओजीयो यद् विहव्यनेजिरे ।।

—अथर्ववेद 7.5.4, 19.8.10

विविध सामग्रियों से जो यज्ञ किये जाते हैं उन यज्ञों से वे यज्ञ बहुत बड़े हैं जो जीवन को यज्ञीय बनाकर जीवन यज्ञ से मानव जाति को सुगंधित करते हैं । यही ज्ञान यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है ।

यज्ञ शब्द यज् धातु से बनता है। महर्षि पाणिनि ने यज् धातु के निम्नलिखित तीन अर्थ किये हैं—

1. देव पूजा – देवों की पूजा, सत्कार। अन्न, वस्त्र, स्थान, आसन्न, नमस्कार यथायोग्य उपयोग आदि विविध प्रकार की सेवा शुश्रुषा से पूजा हो सकती है। तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है—

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवोभव, अतिथिदेवो भव ।

माता-पिता, आचार्य, अतिथि ये सब देव हैं । ये चार देव हैं । हमें इन्हीं की ही पूजा, आदर-सत्कार करना चाहिये, न कि पाषाण मूर्तियों का । वस्तुतः यही हमारे देव हैं ।

यज्ञ के द्वारा हम परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करते हैं । इसके अतिरिक्त इस कार्य का संचालन करने वाले विद्वानों का आदर भी करते हैं । यही देव पूजा है । यज्ञ मुख्यतः चार विद्वानों के निम्नलिखित निर्देश में किया जाता है—

1. होता – ऋग्वेद में निपुण विद्वान् को होता के नाम से पुकारा गया है ।

2. अध्वर्यु – यजुर्वेद के ज्ञाता को अध्वर्यु के नाम से पुकारा गया है ।

3. उद्गाता – प्रत्येक यज्ञ की समाप्ति पर सामवेद के गान करने वाले विद्वान् को उद्गाता कहा गया है ।

4. ब्रह्मा – सारे यज्ञ का संचालक और अपने साथी याज्ञिकों से यज्ञ विधियों को संचालित करने वाले को ब्रह्मा कहा गया है ।

2. संगतिकरण – इसका भाव है संगति करना, मिलना-जुलना, इकट्ठे बैठना । परिवारों में भी संगतिकरण होना चाहिये । माता-पिता अपने बच्चों को सत्संग में अवश्य लायें ताकि उन्हें सुसंस्कार मिल सकें और वे वास्तविक अर्थों में मानव बनकर संसार का कल्याण कर सकें ।

3. दान – इसका अर्थ है–देना । अपना अधिकार त्यागकर दूसरे को अधिकार देना । दान से आत्मिक विकास होता है और मरने पर आत्मा आदि के साथ दान भी मानव के साथ जाता है । यज्ञ के पर्यायवाची नाम हैं – वेनः, विदथः, सवनमः, होत्रा, इवि, मरवः, विष्णुः इन्दुः, प्रजापतिः, सपृतन्तुः, यागः, धर्म आदि ।

अतः यज्ञ की परिभाषा करते हुए महर्षि दयानंद लिखते हैं–

जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त व जो शिल्प व्यवहार और पदार्थ विज्ञान जो कि जगत् के उपकार के लिये किया जाता है उसको यज्ञ कहते हैं ।

–आर्योद्देश्यरत्नमाला विषय पं. 47

इस कारण ऋग्वेद में स्पष्ट आदेश है–

केवलाघो भवति केवलादी –10.117.6

जो व्यक्ति अकेला खाता है । वह पाप खाता है । इसके विपरीत बाँटकर खाने वाला व्यक्ति यज्ञशेष ग्रहण करता है ।

यज्ञ के लाभ –

1. आध्यात्मिक लाभ – 1. अग्नि के गुणों को धारण करना, 2. वस्तु शुद्धि, 3. जातीय उन्नति, 4. वेद रक्षा ।

2. आधिभौतिक लाभ – 1. जलवायु शुद्धि, 2. वनस्पति वृद्धि, 3. शारीरिक आरोग्यता, 4. वर्षा वृद्धि ।

3. यज्ञ की हवि से अन्नमय कोष, समिधा से प्राणमय कोष, अग्नि की प्रचण्डता से मनोमय कोष, अग्नि की संयोजक व विभाजक शक्ति से विज्ञानमय कोष, परिणाम आनंद से रंगों के दर्शनों से आनंदमय कोष शुद्ध होता है । भारतीय संस्कृति तीन द पर आधारित है–

दया, दान और दमन और इसके विपरीत पाश्चात्य संस्कृति D पर आधारित है Drinking, Dancing and Dinning । याद रखो भौतिकवाद में क्षणिक सुख तो है परन्तु सच्ची शांति एवं आनंद केवल आध्यात्मिकवाद में ही है ।

इस प्रकार यज्ञ के अधोलिखित पाँच भागों के द्वारा भी पर्यावरण शुद्ध होता है–

1. मंत्रोच्चारण – जो व्यक्ति निरीह पशुओं को मारते हैं, उनकी आह वातावरण को विक्षुब्ध कर देती है । इसी प्रकार सस्वर उच्चारित वेदमंत्र भी वातावरण के ध्वनि प्रदूषण को नष्ट करके उसे शुद्ध कर देते हैं ।

2. समिधा – यज्ञ में आम, पीपल, ढाक, बरगद आदि वृक्षों की समिधाओं का प्रयोग किया जाता है । इनमें मोनोकार्बनडाई ऑक्साइड नहीं होती और कार्बन भी कम मात्रा में होती है ऑक्सीजन के अधिक होने के कारण नाम मात्र भी हानि नहीं करती । यज्ञ में शामिल होने वाले व्यक्तियों को अनेक रोगों से छुटकारा पाते देखा गया है ।

3. यज्ञकुण्ड – यज्ञकुण्ड में ताप की जितनी तीव्रता होगी द्रव्य उतना ही तीव्रता से फैलकर पर्यावरण को शुद्ध कर देगा । यज्ञ में समिधायें फेंकी नहीं जाती अपितु क्रमशः एक के ऊपर एक करके लगाई जाती हैं । ऑक्सीजन के जाने में इससे सहायता मिलती है । लोहे के यज्ञ कुण्डों में छेद इसलिये ही किये जाते हैं । यज्ञ कुण्ड के ऊपर जो जल के डालने की नाली बनाई जाती है, उसका उद्देश्य यह होता है कि यज्ञकुण्ड से निकली कॉर्बन को जल अपने में समाहित कर लेता है ।

4. घी – अग्नि में डाली घी की एक शीशी वाष्पीकरण होने पर 1700 शीशी बन जाती है, वह पर्यावरण में भर जाता है और उसका शोधन करता है, वहाँ हमारे द्वारा नासिका द्वारा पिया जाता है। जैसे नाक से पिया पानी दूध का, दूध घी का और घी अमृत का कार्य करता है। इसलिये यज्ञ में डाला गया घी अति लाभदायक है। जिन व्यक्तियों को डॉक्टर घी न खाने की सलाह देते हैं और जिन्हें घी खाना हानिकारक है, वे व्यक्ति भी यज्ञ विधि से घी का सेवन कर सकते हैं।

5. सामग्री – इसमें अनेक औषध तत्त्व होते हैं। यज्ञभावित वायु श्वास द्वारा रक्त में मिलकर अनेक रोगों का शमन कर देती है जो कि व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है। इसके विषय में महर्षि दयानंद जी के जीवन की एक घटना उल्लेखनीय है।

जब महर्षि दयानंद जी अलीगढ़ पधारे तो उन्हीं के एक भक्त सर सय्यद अहमद खाँ ने उन्हीं से पूछा–

आपकी अन्य बातें तो युक्ति युक्त प्रतीत होती हैं पर यह बात कि थोड़े से हवन से वायु का सुधार हो जाता है, हमें युक्ति संगत प्रतीत नहीं होती।

इस पर महर्षि दयानंदजी ने यज्ञ के अनेक लाभ बताने के पश्चात् सैय्यद अहमद खाँ से पूछा–आपके यहाँ कितने मनुष्यों का भोजन बनता होगा? उन्होंने उत्तर दिया–लगभग 50-60 व्यक्तियों का।

महर्षि दयानंद जी – आप के यहाँ कितने सेर दाल प्रतिदिन पकती होगी?

सर सैय्यद अहमद खाँ – कोई छः सात सेर।

महर्षि दयानंद जी – इतनी दाल में कितनी हींग का छोंक दिया जाता है।

सर सैय्यद अहमद खां – माशा भर से कम तो नहीं होता होगा।

महर्षि दयानंद जी – क्या इतनी थोड़ी हींग सारी दाल को सुगंधित बना देती है?

सर सैय्यद अहमद खां – अवश्य बना देती है।

तब महर्षि दयानंद ने उत्तर दिया – इतनी थोड़ी हींग की तरह थोड़ा सा किया हुआ अग्नि होम वायु को सुगंधित कर देता है ।

इस प्रकार महर्षि दयानंद के इस उत्तर से सर सैय्यद अहमद खाँ संतुष्ट हो गये ।

पांच प्रकार के यज्ञ

1. ब्रह्मयज्ञ (संध्या) – ब्रह्मयज्ञ के द्वारा परमात्मा का भली-भाँति ध्यान करते हैं । इसे ब्रह्मयज्ञ या संध्या के नाम से पुकारा जाता है । अतः दिन एवं रात के संयोग समय दोनों संध्याओं में सब व्यक्तियों को परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करनी चाहिए । यह सब कार्य शरीर और मन की शुद्धि से होने चाहिये । इससे प्रभुभक्ति, स्वाध्याय, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, ज्ञान कर्त्तव्य पालन, विद्या, धर्म आदि शुभ गुणों की प्राप्ति होगी । जैसे किसी हिन्दू कवि ने लिखा है–

होकर अतिशय श्रद्धा विभोर जो ईश्वर के गुण गाता है ।
ईश्वर चिन्तन हो सुबह शाम यह ब्रह्म यज्ञ कहलाता है ।
जो प्राणी अखिलेश 'ओ३म्' का सतत् ध्यान नित धरते हैं ।
वे सद्विचार निज हृदयधार, साक्षात् प्रभु का करते हैं ।

2. देवयज्ञ (हवन) – इसका श्रीगणेश दाईं हथेली में शुद्ध जल लेकर ओ३म् अमृतो पस्तरणमसि स्वाहा से किया जाता है । विशेष अवसरों पर "स्वस्तिवाचनम्" के 31 मंत्र और "शांतिकरणम्" के 28 मंत्र भी बोले जाते हैं । यदि किसी व्यक्ति के पास समयाभाव है तो गायत्री मंत्र के साथ स्वाहा जोड़कर 35 बार बोलने से भी यज्ञ की पूर्णाहुति हो जाती है । यहाँ तक कि यदि व्यक्ति पंचमुख गायत्री और स्वाहा जोड़कर भी यज्ञ की पूर्णाहुति कर सकता है । अतः आचार्य श्री रामशर्मा "गायत्री महाविज्ञान" में लिखते हैं–

जहाँ कुछ भी विधान न मालूम हो, वहाँ केवल शुद्ध घृत की आहुतियां गायत्री मंत्र के अंत में "स्वाहा" शब्द लगाते हुए दी जा सकती हैं । किसी न किसी रूप में यज्ञ परम्परा को जारी रखा जाये तो यह भारतीय संस्कृति की एक बड़ी भारी सेवा है ।
–पृ० 132

इन दोनों विधियों का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जाता है–

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा। –यजुर्वेद 36.3, ऋग्वेद 3.62.10

हे प्रभु आप सत्-चित्-आनंद स्वरूप हैं। आप ही सृष्टि के उत्पादक, पालक, संहारक, वेदज्ञान दाता एवं कर्मफल दाता हैं। हम आपके प्रेरणादायक, शुद्धस्वरूप, वरणीय, परमपवित्र दिव्यस्वरूप का हृदय मंदिर में ध्यान करते हैं। आप हमारी बुद्धियों को कृपया सत्विचारों एवं सत्कार्यों में प्रेरित कीजिये।

अतः परमात्मा की उपासना, विद्वानों का सत्संग, उपकार की भावना कर्त्तव्य पालन, हवन से वायु, वर्षा, जल की शुद्धि होकर वर्षा द्वारा संसार को सुख प्राप्त होना अर्थात् शुद्ध वायु का श्वास, स्पर्श, खान पान से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़कर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होना। इसलिये ही इसको देवयज्ञ के नाम से पुकारा जाता है। जैसे किसी हिन्दी कवि ने लिखा है–

अग्निहोत्र है "देवयज्ञ" सर्वोपरि कर्म सर्वहितकारी,
वायुमण्डल होता है शुद्ध, सुख पाते सभी प्राणधारी।
यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म सर्वदा जो प्राणी अपनाता है,
लोक और परलोक सुधारे मन वांछित फल पाता है।

3. पितृयज्ञ – इसके दो भेद हैं।

(1) तर्पण – जिस कर्म से विद्वान् देव, ऋषि और पितरों को सुख पहुँचाते हैं।

(2) श्राद्ध – उसी प्रकार जो उन व्यक्तियों का श्रद्धा से सेवन करना है।

तर्पण और श्राद्ध केवल जीवित व्यक्तियों का ही होता है और इससे उन्हीं को सुख होता है परन्तु मृतकों को सुख पहुँचाना सर्वथा असम्भव है। तर्पण आदि कर्म में सत्कार करने योग्य तीन है– (1) देव, (2) ऋषि, (3) पितर।

अतः जीवित देव ऋषियों व पितरों का श्रद्धा व तर्पण करना ही पितृयज्ञ कहलाता है ।

गृहस्थ जब माता-पिता, ज्ञानी महात्माओं की सेवा करेगा तब उसका ज्ञान बढ़ेगा । उसे सत्य-असत्य का निर्णय कर सत्य को ग्रहण एवं असत्य का त्याग करके सुखी रहेगा । जीवित माता, पिता, पित्तरों की श्राद्ध, तर्पण द्वारा सेवा करनी चाहिए । जैसे किसी हिन्दी कवि ने लिखा है–

तृतीय यज्ञ है पितृयज्ञ, पितृ माता की सेवा करना,
आचार्य और विद्वान् जनों की शिक्षा निज चित्त में धरना ।
जो माता-पिता, गुरुजनों की सेवा से चित्त चुराये ।
निश्चय समझो बस वह प्राणी घोर कलेश उठाये ।

4. बलिवैश्वदेव यज्ञ (भूतयज्ञ) – इसका भाव है कि कुत्तों, कंगालों, कुष्ठी, रोगियों, काक पक्षियों व चींटी आदि के लिये छः भाग अलग-अलग बाँट कर उनको देने चाहिये ताकि सदा उनकी प्रसन्नता प्राप्त करते रहें । इसका मुख्योद्देश्य यह है कि पाकशालास्थ वायु का शुद्ध होना और जो अज्ञात, अदृष्ट जीवों की हत्या होती है, उसका प्रत्युपकार है । जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में –

सब जीवों पर दया दिखाना, बलिवैश्व यज्ञ कहलाता है,
इसके द्वारा पाप कर्म से मनुज स्वयं बच जाता है ।

5. अतिथि यज्ञ (नृयज्ञ) – अतिथि का भाव होता है पूजनीय । अतः जब कभी कोई धार्मिक, परोपकारी सत्योपदेशक पक्षपातरहित विद्वान् किसी के भी घर में पधारे तो उसका हार्दिक स्वागत करें । यथायोग्य सेवा करें और उससे ज्ञान प्राप्त करें । वस्तुतः यही अतिथि यज्ञ है ।

महाराजा जनक के जीवन की यज्ञ के विषय में एक अत्यंत शिक्षाप्रद घटना प्रस्तुत की जाती है । एक समय की बात है कि महाराजा जनक ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया । उन्होंने प्रबन्धकों को यह आदेश दिया कि सारी पृथ्वी के ऋषियों को यज्ञ के लिये निमंत्रण भेजा जाये । एक बहुत बड़े मैदान के

अंदर यज्ञ किया गया जहाँ पर सारी पृथ्वी के ऋषि पधारे। जिस दिन यज्ञ होना था, सब ऋषि महाराजा जनक के महल को जा रहे थे। उसी समय एक वृक्ष के नीचे उद्दालक ऋषि बैठे हुए भुने हुए चने चबा रहे थे। उन्होनें ऋषियों से पूछा—"कहाँ जा रहे हो? उन्होंने उत्तर दिया—"महाराज जनक के आज बहुत बड़ा यज्ञ है। तुमको निमंत्रण नहीं आया? कहने लगे नहीं, हमको तो निमंत्रण नहीं आया। परन्तु उद्दालक ऋषि तो बिना बुलाये आ गये और उन्होंने आते ही यह कहा—

ठहरो, अभी यज्ञ नहीं करना।

महाराजा जनक उनको देखकर खड़े होकर पूछा—क्यों? कहने लगे—मेरे 5 प्रश्न हैं। यदि उन पांच प्रश्नों को बिना जाने यज्ञ होगा तो वह मृत यज्ञ होगा। जो मेरे पांच प्रश्नों का उत्तर नहीं जानता वह मृतयज्ञ कराता है। जैसे बिना आत्मा के लाश पड़ी है ऐसे ही बिना आत्मा का यह यज्ञ होगा। महाराज जनक ने सविनय निवेदन किया, आप प्रश्न कीजिये। यहां तो सारी पृथ्वी के ऋषि बैठे हुए हैं। उद्दालक ऋषि ने निम्नलिखित पांच प्रश्न किये—

1. यज्ञ की आत्मा क्या है?
2. यज्ञ का प्राण क्या है?
3. यज्ञ का सार क्या है?
4. यज्ञ के विभिन्न देवों का मुख क्या है?
5. यज्ञ की सफलता क्या है?

कोई भी ऋषि इन पाँचों प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सका।

वस्तुतः जो इन प्रश्नों का उत्तर नहीं जानता वह यज्ञ करने वाला और कराने वाला मृतयज्ञ करता है। महाराजा जनक ने ऋषियों की ओर देखा। वे सब अपना-अपना आसन छोड़कर अलग हो गये और ऋषिगण को भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं आया। जब सारे आसन खाली हो गये तब महाराजा जनक ने उद्दालक ऋषि से निवेदन कर आदरपूर्वक कहा—आप ही इन प्रश्नों

का उत्तर हमें समझायें, तो उद्दालक ऋषि ने अपने प्रश्नों के बड़े सुन्दर उत्तर दिये।

अब हम पांचों प्रश्नों के उत्तरों का उल्लेख अधोलिखित पंक्तियों में करते हैं।

पहला प्रश्न था यज्ञ की आत्मा क्या है? ऋषि उद्दालक ने उत्तर दिया कि यह जो "स्वाहा" शब्द है यही यज्ञ की आत्मा है। वस्तुतः जैसे व्यक्ति तन, मन और आत्मा के मेल से ही बनता है और कार्य व्यवहार कर सकता है इन तीनों में से एक भी न हो तो व्यक्ति अपना कार्य व्यवहार नहीं कर सकता है। इसी प्रकार सत्य यज्ञ की आत्मा है, यश यज्ञ का मन है और श्री यज्ञ का तन है। इसी प्रकार स्वाहा के निम्नलिखित तीन अर्थ है–

1. सु + आहा = सत्य बोलना।

2. स्व + हा = स्वयं का त्याग। जब व्यक्ति स्वत्व का राष्ट्र व धर्म के लिये अर्पण करता तो इसका यश बढ़ता है।

3. स्व + हा = सम्पत्ति का त्याग। जब व्यक्ति अपनी सम्पत्ति अथवा श्री लक्ष्मी से किसी असहाय का आश्रय बनता है तब भी उसका यश बढ़ता है।

इसके अतिरिक्त स्वाहा शब्द की व्युत्पत्ति तीन शब्दों से मिलकर बनती है। स्व का अर्थ है–स्वयं, आ का अर्थ है–सम्पूर्ण और हा का अर्थ है–प्रभु समर्पण। इस प्रकार स्वाहा शब्द का अर्थ हुआ प्रभु के प्रति तन, मन, धन से सम्पूर्ण समर्पण। जो व्यक्ति ऐसा करता है उसका जीवन भी सुखमय, शांतमय आनंदमय बन जाता है और वही प्रभु का अनन्य भक्त होता है।

पहला प्रश्न था यज्ञ की आत्मा क्या है? यह जो स्वाहा शब्द है यही यज्ञ की आत्मा है। अपने शुभ, श्रेष्ठ का दूसरों के कल्याण के लिये त्याग कर देना, दान कर देना यही यज्ञ की आत्मा है। सामग्री बहुत अच्छी है, घी बहुत बढ़िया है, अग्नि जल रही है, चंदन की समिधा है, पर स्वाहा कहने पर कोई आहुति

नहीं देता तो यज्ञ कैसे होगा। यज्ञ महिमा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–

यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म –शतपथ ब्राह्मण 1.7.35

यज्ञो हि श्रेष्ठतम कर्म –तैतिरीय संहिता 32.1.4

यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है और इससे श्रेष्ठ और कोई कर्म है ही नहीं।

अतः अग्नि में डाली गई हुई आहुति त्याग की भावना का भी प्रतीक है। होम की अग्नि जहाँ हमें त्याग की प्रेरणा देती है वहाँ हमें यह भी सिखाती है कि जीवन में सदा ऊपर की ओर उठो।

आज आवश्यकता है जीवन अर्पण करने की गृहस्थी गृहस्थ में रहता हुआ फालतू समय में निष्काम सेवा करे। सारा समय संसार की निष्काम सेवा करे। जीवन अर्पण करो, धनवान धन अर्पण करे, जिसके पास विद्या है वह विद्या अर्पण करे और जिसके पास समय है वह समय का अर्पण करे।

विश्वात्मा बावरा जी लिखते हैं–

स्वयं को देखने का प्रयास करो, स्वयं को अध्ययन करने का प्रयास करो, स्वयं का आत्मनिरीक्षण करने का प्रयास करो, स्वयं को जानने का प्रयास करो कि आप कौन हो और आप कहाँ पर हो। यह सारी बातें योग एवं यज्ञ से भी बढ़कर है।

हर प्रकार से अर्पण करने से ही स्वाहा शब्द का बार-बार प्रयोग किया गया है और इदं न मम का बार-बार। कई विद्वानों का विचार है कि जहाँ स्वाहा आये वहाँ पर आहुति घी युक्त सामग्री की दें और जहाँ पर इदं न मम आये वहाँ पर केवल घी की आहुति दे। परन्तु दुर्भाग्य वश आज मुख्यतः अर्पण की भावना का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। जैसे–

हम क्या कहें हबीब, क्या कार-ए-नुमायाँ कर गये।
बी०ए० हुए नौकर हुये, पैंशन मिली और मर गये। –अकबर इलाहाबादी

दूसरा प्रश्न था– यज्ञ का प्राण क्या है? जो आप घी की एक बूंद छोड़कर कहते हैं –इदं न मम अर्थात् यह मेरे लिये और मेरा कुछ नहीं है।

पिता धन कमाता है। धन अपने लिये नहीं कमा रहा, परिवार के लिये कमा रहा है। केवल अपने लिये जो कर रहा है वह यज्ञ की हत्या कर रहा है। जैसे छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है–

पुरुषो वाव यज्ञ –3.16.1

मानव जीवन यज्ञ है।

वस्तुतः मानव जीवन की सफलता, पुरुष का पुरुषत्व, यज्ञ में, त्याग में है। इसी कारण वैदिक अग्निहोत्र की प्रत्येक आहुति के बाद "इदं न मम" का उच्चारण करते हैं। यह त्याग की भावना का अभ्यास है। जैसे तुलसीदास के शब्दों में–

तरुवर फले न आप को, नदी न पीवे नीर।
परमारथ के कारणे, संतन धरा शरीर।।

तीसरा प्रश्न था यज्ञ का सार क्या है?

इसका उत्तर है सुगन्धि यज्ञ का सार है। यज्ञ किया और सुगंधि न फैली तो क्या यज्ञ हुआ? कुछ भी नहीं। सड़क पर जाने वाला कभी यह न कहने लगे कि कहीं यज्ञ हो रहा है। सुगंधि आ रही है तो आपने यज्ञ क्या किया? जिस कमरे में यज्ञ हो रहा है उसमें सुगंधि नहीं है तो यज्ञ का लाभ क्या, कुछ भी नहीं।

चौथा यज्ञ देवों का मुख अग्नि है।

पांचवा यथायोग्य दान ही करते रहना यज्ञ की सफलता है क्योंकि यज्ञ तो करवाया परन्तु दान न दिया वह सफल यज्ञ नहीं कहलायेगा।

निष्कर्षतः मानव जीवन में यज्ञ सर्वश्रेष्ठ कर्म माना गया है क्योंकि इससे मानवता का कल्याण होता है। पं० प्रकाश चंद्र कविरत्न के शब्दों में–

यज्ञ जीवन का हमारे श्रेष्ठ सुन्दर कर्म है।
यज्ञ का करना कराना आर्यों का धर्म है।
यज्ञ से दिशाएं हों सुगंधित शांत हो वातावरण।
यज्ञ से सदज्ञान हो, हो यज्ञ से शुद्ध आचरण।
यज्ञ से हो स्वस्थ काया, व्याधियां सब नष्ट हों।।

यज्ञ से सुख सम्पदा हो, दूर सारे कष्ट हों ।
यज्ञ से दुष्फल मिटते यज्ञ से जल वृद्धि हो ।
यज्ञ से धन धान्य हो, बहुभांति सुखमय सृष्टि हो ।
यज्ञमय यह विश्व है विश्वेश यज्ञ स्वरूप है ।
यज्ञमय अखिलेश ! ऐसी आप अनुकम्पा करो ।
यज्ञ के प्रति आर्य जनता में अमित श्रद्धा भरो ।
यज्ञ पुण्य प्रकाश से सब पाप ताप विभिर हो ।
यज्ञ नौका से अगम संसार सागर से तरो ।

10. अभिमान

कोई मग़रूर अपने ज़ोर पर है कोई दौलत पर
कोई नाज़ा शिकोहो शान (ऐश्वर्य-वैभव) ये हैं कोई हश्मत (पद) पर
ज़फ़र तकिया (भरोसा) किया मैंने फ़क्त उसकी इनायत (कृपा) पर
खुशी से मैं यही कहता हूँ, राज़ी अपनी क़िस्मत पर ।
ख़ुदा दारम चे ग़म दारम, ख़ुदा दारम चे ग़म दारम ।
(मैं ख़ुदा वाला हूँ), (मैं ख़ुदा वाला हूँ ।)

—बहादुरशाह ज़फर मुखम्मस (पाँच पंक्तियों की कविता)

अभिमान भक्ति में बहुत बड़ी बाधा है क्योंकि जहाँ अभिमान होता है वहाँ भगवान् नहीं होते । जहाँ ग़रूर होता है वहाँ हजूर नहीं होते । जहाँ तकरार होता है वहाँ कर्तार नहीं होते, जहाँ अहंकार होता है वहाँ ओंकार नहीं होते, जहाँ मैं-मैं होती है वहाँ तू-तू नहीं होती । क्योंकि जितना-जितना मेरा और मैं बढ़ेगा, उतना उतना तू-तू और तेरा-तेरा घटेगा । अभिमानी व्यक्ति को कोई भी व्यक्ति और शक्ति अपने से बड़ी नहीं लगती । चाहे वह परमात्मा ही क्यों न हो । इनके विषय में स्वामी विवेकानंद ने कहा था—

संसार त्याग करने का अर्थ है—इस अहं को बिल्कुल भूल जाना । अहं की ओर कभी भी ध्यान न लाना । लोग जब तुम्हारी बुराई करें तो उन्हें आशीर्वाद दो, सोचकर देखो तो वे तुम्हारा कितना उपकार करते हैं । अनिष्ट यदि किसी का होता है, तो केवल उनका अपना ही होता है । ऐसे स्थान पर जाओ, जहाँ पर तुमसे लोग घृणा करें । तुम अपने अहं को अपने भीतर से बाहर निकाल फेंकने दो । ऐसा होने पर तुम भगवान् के सन्निकट पहुँच जाओगे ।

आप अभिमान किस बात का करते हो क्योंकि धन में आप कुबेर नहीं, सौंदर्य में आप कामदेव नहीं, विद्वता में आप बृहस्पति नहीं, ऐश्वर्य में आप इन्द्र नहीं और प्रतिष्ठा में आप गणेश नहीं हो । वस्तुतः जब व्यक्ति यह अनुभव करने लगता है तो मैं किसी गुण-विशेष की प्राप्ति में अन्य लोगों से

श्रेष्ठ हूँ, मेरे समान कोई नहीं है, तभी अभिमान हो जाता है। अभिमान होते ही वह संतुलन खो देता है। जब मनुष्य अभिमान से ग्रस्त हो जाता है तो न वह ठीक सोच सकता है और न हीं ठीक-ठीक कोई काम कर सकता है, परन्तु जब वह घमंड के कारण अपमानित होता है तो फिर संतुलित हो जाता है। अभिमान के कारण ही वह भूल जाता है कि वह अल्पज्ञ है और उसके भीतर कोई शक्ति है। अतः संतों ने अभिमान की निन्दा की है।

अभिमान निम्नलिखित आठ प्रकार का है–1. मैं ठीक हूँ, 2. आप गलत हैं, 3. मैं संग्रह करूँ, 4. आप संग्रह न करें, 5. मैं आप पर शासन करूँ, 6. आप मुझ पर शासन न करें, 7. मैं न्यायसंगत हूँ, 8. आप न्यायसंगत नहीं हैं। अतः अभिमान अनेकों दुःखों का कारण है। एक कवि ने कितना सुन्दर लिखा है–

काम गया ध्यान आया। क्रोध गया विवेक आया।
लोभ गया ईमान आया। मोह गया विराम आया।
अभिमान गया भगवान् आया।

अभिमान के कई कारण होते हैं जैसे – वंश, सत्ता, धन, शारीरिक बल, सौन्दर्य, स्वजन आदि परन्तु ये सब नाशवान् एवं क्षणभंगुर वस्तुएं हैं। हमें किसी भी वस्तु का अभिमान नहीं करना चाहिए। जैसे गुरु नानक देव जी ने लिखा है–

सारे नशे संसार के, उतर जात प्रभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।।

अभिमान रोग है और विनम्रता इसकी औषधि है। यदि विनम्रता को अपनाते तो उसमें अभिमान रूपी दानव नहीं रहता। इसके विषय में एक शिक्षाप्रद दृष्टांत इस प्रकार है–

एक व्यक्ति ने एक बकरी और एक मैना पाल रखी थी। प्रतिदिन प्रातःकाल जब मैना गाती थी तो वह अत्याधिक प्रसन्न हो जाता था, परन्तु बकरी जब मैं-मैं करती तो उसे अच्छा नहीं लगता था। उसने एक दिन

महात्मा कबीर से पूछा—"महात्मा जी। मैना गाती है तो उसका स्वर इतना मीठा क्यों लगता है। इसके विपरीत बकरी की मैं-मैं सुनकर सभी नाक भौं सिकोड़ लेते हैं। महात्मा कबीर ने उत्तर दिया—मैना का स्वर इसलिये मीठा लगता है क्योंकि "मैं ना", "मैं ना" अर्थात् "मैं नहीं" कहती रहती है। इसके विपरीत बकरी का स्वर इसलिये मीठा नहीं लगता, क्योंकि वह "मैं-मैं", "मैं-मैं" करती रहती है। जिसका अर्थ होता है कि अभिमान और अभिमानी सदा ही बुरा प्रतीत होता है। अभिमान के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं—

1. वंश — कई व्यक्तियों को अपने वंश का भी अभिमान हो जाता है कि मैं ब्राह्मण हूँ, वह शूद्र है। परन्तु भाई जन्म से सब शूद्र होते हैं। संसार का कोई व्यक्ति जन्म से बड़ा नहीं होता अपितु कर्म से बड़ा होता है।

2. शारीरिक बल — किसी भी व्यक्ति को शारीरिक बल का अभिमान कभी नहीं करना चाहिये क्योंकि यह शरीर क्षण भंगुर एवं नाशवान् है। संसार के किसी भी व्यक्ति को मालूम नहीं कि उसका जीवन कब, कहाँ, कैसे समाप्त हो जाए। क्योंकि यह सारा संसार काल व्याल के गाल में है। व्यक्ति को संसार में ऐसे रहना चाहिये जैसे एक यात्री धर्मशाला में आकर रहता है। कबीर जी ने लिखा है—

कबीरा गर्व न कीजिए काल गहे कर केस।
न जाने कित मारी है क्या घर क्या परदेस।।
कबीरा गर्व न कीजिए उच्चा देख अनास।
भई परे पर लेटना उपर जमसी घास।।

3. सौन्दर्य एवं यौवन — व्यक्ति को सौंदर्य एवं यौवन का भी अभिमान नहीं करना चाहिए। क्योंकि सौंदर्य एवं यौवन भी अस्थायी है। किसी भी रोग के आने और बुढ़ापे के कारण ये नहीं रहते हैं जैसे कोई देवी आज अत्यंत सुन्दर है किसी रोग या बुढ़ापे के कारण वह कुरूप हो सकती है। जैसे एक उर्दूशायर के शब्दों में—

हमने दुनियाँ-सराए फानी देखी, हर चीज यहाँ की आनी जानी देखी।
जो आके न जाए वो बुढ़ापा देखा, जो जाके न आए वो जवानी देखी।

शरीर सिकुड़ गया, चाल धीमी हो गई, दाँत गिर गये, दृष्टि नष्ट हो गई, बहरे हो गये, मुख से लार टपक रही है, कुटुम्बी आदर नहीं करते हैं, स्त्री सेवा नहीं करती है और पुत्र भी दुःख देते हैं । इन सब का मुख्य कारण वृद्धावस्था है । जैसे एक उर्दू शायर ने कितना सुन्दर लिखा है–

रंग पे नाज़ न कर, रंग बदल जाता है ।

ये वो मैह्मा (अतिथि) जो आज आता कल जाता है ।।

इश्क़ पे नाज़ करें तो कोई बात भी है ।

हुस्न पे नाज़ ही क्या ये तो ढ़ल जाता है ।।

4. सत्ता – जब व्यक्ति शासन सत्ता को हाथ में लेता है तो उसे अभिमान हो जाता है । यहाँ तक कि सामान्य अधिकारी बनने पर भी कई बार मनुष्य अहंकार करने लगता है । परन्तु जब वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से अपमानित होता है तब उसका अहंकार घट जाता है ।

वास्तव में सामान्य अधिकार की अपेक्षा शासन सत्ता का अहंकार अत्यंत अधिक होता है । शासन सत्ता प्राप्त करके मनुष्य अहंकार के कारण पागल सा हो जाता है । उसके विवेक चक्षु बंद हो जाते हैं और वह दूसरों को कुछ भी नहीं समझता है ।

इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं? जैसे अहंकारी दुर्योधन और उसके अहंकारी मित्र किस प्रकार मारे गये? भीष्म पितामह, कर्ण, द्रोणाचार्य, शकुनि और दुर्योधन श्रीकृष्ण की बात को स्वीकार करके पांडवों को पांच ग्राम दे देते तो महाभारत का भयानक युद्ध टल जाता । परन्तु उसके अभिमान ने उसका और उसके साथियों का भी नाश कर डाला । इसके विषय में एक कहानी निम्नलिखित है–

अपने विचित्र उत्तर देने के लिए प्रसिद्ध एक फकीर ने एक सम्राट् को अहंकार के बारे में समझाया । वे सम्राट् बहुत दयालु थे । उन्होंने समाज सेवा के बड़े-बड़े काम किए थे । इस बात का वे प्रदर्शन भी करते थे । उनकी इच्छा थी कि वह फकीर एक बार उसके महल में आए, ठहरे और राज्य में किए गए

सेवा के कार्य को देखे। अपने महान् दानी होने की पुष्टि वो इस फकीर से कराना चाहता था। ऐसा हुआ भी। सम्राट! ने फकीर से पूछा-मैंने बहुत मंदिर बनवाए हैं, अनाथालय, चिकित्सालय, बाग़-बग़ीचे, वृद्धाश्रम बनवाए हैं, हर वर्ग की सेवा की है। फिर धीरे से सम्राट् ने उस फकीर से पूछा—आप तो अंतर्यामी हैं। दुनियाँ मुझे दानी कहती है पर आप बताएं ये सब करने पर मुझे कितना पुण्य मिलेगा तथा स्वर्ग में कौन सी स्थिति प्राप्त होगी? फकीर ने कहा—पाप-पुण्य को तो इस सब से कोई लेना देना नहीं। रहा सवाल स्वर्ग का तो तुम्हे स्वर्ग नहीं नर्क ही मिलेगा। सम्राट् चौंक गये। उन्होंने आज तक कभी किसी के मुंह से ऐसी बात नहीं सुनी थी। उन्हें गहरी चोट लगी। उनकी सारी विनम्रता जाती रही। दानी राजा की जगह क्रोधी राजा में परिवर्तित हो गया और उन्होंने फकीर से कहा— जब आप जानते ही नहीं है तो बोलते क्यों हैं?

फकीर मुस्कराए और कहा—अहंकार को जरा सी चोट लगी और आपका स्वर बदल गया। प्रशंसा सुनकर कोई परमात्मा तक नहीं पहुँच सकता। दान करके पुण्य अर्जित होने से ही परमात्मा नहीं मिलता। इससे साबित होता है कि यह सब दान पुण्य तुमने दूसरों के लिए नहीं, अपने लिए किए और इसीलिए न तुम खुद को पहचान पा रहे हो न दूसरों को। दान के पीछे अहंकार की वृत्ति को हटाओ और देखो। समझ में आएगा कि तुम तो केवल एक साधन हो, करवा कोई और रहा है। राजा ने जब विचार किया तब वे इन सबका अर्थ समझ गए। अहंकार जब तक मनुष्य के भीतर है, तब तक वह न तो स्वयं को ठीक से जान पाता है और न अन्य लोगों को ही समझ पाता है।

5. स्वजनः – कुछ व्यक्तियों को अपने स्वजनों जैसे माता-पिता, भाई-बहन, पत्नी, पुत्र-पुत्रियों आदि का भी अभिमान हो जाता है। जैसे किसी व्यक्ति के पिता, भाई आदि किसी उच्चपद पर नियुक्त हैं तो वह व्यक्ति दूसरे निर्धन व्यक्तियों पर अनुचित प्रभुत्व डालकर अनुचित लाभ उठाता है। वह अहंकारी व्यक्ति यह कहता है कि मैं अपने प्रियजन से यह काम करवा दूँगा

या वो काम करवा दूंगा । हमें अपने स्वजनों की प्राप्त सत्ता का कभी भी अहंकार नहीं करना चाहिए । अपितु परमेश्वर की धरोहर समझ कर उसका धन्यवाद करना चाहिये कि मेरे प्रियजनों को परमेश्वर ने ही उच्चपद प्रदान किया है । अपने प्रियजनों से मिलकर अच्छे कार्य करने चाहिएं जिससे ग़रीबों का भला हो । गर्व के स्थान पर गौरव की भावना अनुभव करके विनम्रता को अपनाना चाहिये ।

6. पद प्रतिष्ठा :– कई व्यक्तियों में पदप्रतिष्ठा का अभिमान हो जाता है । जैसे कोई कहता है कि मैं राष्ट्रपति हूँ, मैं प्रधानमंत्री हूँ, मैं सुप्रीम कोर्ट का मुख्य न्यायाधीश हूँ, मैं मुख्यमंत्री हूँ आदि । परन्तु ये सारे पद अस्थायी हैं । आज तक अनेक चक्रवर्ती सम्राट् हो चले हैं । आज उनका नामो-निशान नहीं है । क्योंकि परमात्मा, आत्मा एवं प्रकृति के अतिरिक्त सब कुछ क्षण भंगुर, नाशवान् एवं परिवर्तनशील है । जैसे जब बादशाह औरंगजेब तख्त पर आकर बैठता तो उससे पूर्व एक व्यक्ति ने कहा था, सावधान ! होशियार ! आलमगीर महरुद्दीन मुहब्बत औरंगजेब शंहशाह हिन्दुस्थान तशरीफ ला रहे हैं । उसके शब्द ही कानून थे पर आज उसकी हड्डियाँ भी नहीं मिलती । अतः हमें पद-प्रतिष्ठा का भी कभी अभिमान नहीं करना चाहिए ।

7. धन :– व्यक्ति को धन सम्पत्ति, भूमि आदि का कभी भी अभिमान नहीं करना चाहिये । व्यक्ति के पास जितनी भी सम्पत्ति है, उससे भी अधिक धनी व्यक्ति संसार में है । यदि वह ऐसा सोचता है तो उसका अभिमान कम हो सकता है । ये वस्तुएं नाशवान् हैं । व्यक्ति को इन पर तनिक भी अहंकार नहीं करना चाहिये । धर्म, नैतिकता एवं आध्यात्मिकता स्थायी वस्तुएं हैं । इन का ही संचय करना चाहिए क्योंकि यह मृत्यु के समय हमारे साथ जाती है । एक दिन धन सम्पत्ति यही छोड़कर जानी है । जैसे कवि के शब्दों में–

खाली हाथों यहाँ से सिकंदर गया ।
सब खजानों की चाबी धरी रह गई ।।
वैद्य लुक़मान को भी क़ज़ा खा गई ।
यहाँ ज़िन्दगानी का कोई भरोसा नहीं ।।

8. ज्ञान : – कई व्यक्तियों को ज्ञान का अभिमान हो जाता है । परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह कितना बड़ा विद्वान् क्यों न हो सदा ही अल्पज्ञ एवं अल्पशक्तिमान रहता है । हाँ कोई व्यक्ति किसी भी एक विषय में बहुज्ञ तो हो सकता है, क्योंकि संसार में अनंत ज्ञान एवं विद्याएं हैं । संसार में अनेक भाषाएं हैं । अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक आदि विषय हैं । अतः संसार के प्रत्येक व्यक्ति का ज्ञान संसार सागर में ली गई केवल एक बूंद के समान है । अतः सुविख्यात वैज्ञानिक न्यूटन ने भी लिखा था–

मैं सागर के किनारे खड़ा हूँ । ज्ञान का विशाल एवं अथाह सागर मेरे सामने ठांठे मार रहा है । मैं किनारे पर खड़ा घोंघे बीन रहा हूँ ।

व्यक्ति चाहे कितना भी ज्ञान प्राप्त करले परन्तु वह सीमित ही रहता है जैसे ज़ौक ने लिखा है–

इस जहल का है ज़ौक ठिकाना कुछ भी,
न किया इल्म से अक्ल को दाना कुछ नहीं ।
हमने जाना था कि इल्म से कुछ जानेगें,
जाना तो यह जाना कि न जाना कुछ भी ।

यह सारा संसार आशा और विश्वास पर चलता है क्योंकि कोई भी एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को भी पूर्णतः नहीं जान सकता । जैसे उर्दू शायर हाली पानीपती के शब्दों में –

जैसे नज़र आता हूँ, न ऐसा हूँ मैं ।
और जैसा समझता हूँ न वैसा हूँ मैं ।।
अपने से ही ऐब हूँ छिपाता अपने ।
बस मुझको ही मालूम है कैसा हूँ मैं ।।

अभिमान रूपी राक्षस को नियंत्रित करने के मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं–

1. विनम्रता – अभिमान रूपी रोग की दवा है विनम्रता । जब भी

आपके मन में अभिमान रूपी रोग का आविर्भाव हो तो उसे विनम्रता रूपी औषधि के द्वारा नियंत्रित कीजिए ।

2. ऊँची स्थिति वालों को देखना – जब व्यक्ति अपने से ऊँची स्थिति वालों को देखता है तभी उसके अभिमान में कमी आती है । वह सोचने लगता है कि वह तो संसार में एक कण के समान है ।

3. उसके समान अन्य व्यक्तियों का होना – जब व्यक्ति यह सोचता है कि उसके समान संसार में अनेक व्यक्ति है, तभी उसके अभिमान में कमी आ जाती है ।

4. नश्वर वस्तुएं – जब व्यक्ति यह सोचता है कि सब भौतिक पदार्थ – शरीर, धन, सत्ता आदि नाश्वान् हैं । इन सबको एक दिन सबने छोड़कर जाना है तभी उसके अभिमान में कमी आती है । उस समय वह समझने लगता है कि सारा संसार एक धर्मशाला है और हम सब यात्री है अतः वे सब भोग्य पदार्थों का त्याग भाव से प्रयोग करने लगता है । उसके जीवन में आसक्ति की कमी हो जाती है । वह अपना जीवन सुखमय, शांतमय एवं आनंदमय व्यतीत करने लगता है ।

निष्कषर्तः इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी वस्तु का कभी भी अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि अभिमानी व्यक्ति का कोई भी आदर नहीं करता । वह एक फुटबाल की भाँति होता है जिसको चारों ओर से ठोकरें पड़ती है । जैसे एक उर्दूशायर ने लिखा है–

छोड़ा है जब से अहम्, कुछ-कुछ नज़र आने लगा है ।
अब तो हर शख़्स में तू नज़र आने लगा है ।
तेरी बंदगी में इस कदर खो गया हूँ ।
ज़र्रे-ज़र्रे में तू नज़र आने लगा है ।
अहम् आदमी को ख़ुदा से तोड़ता है ।
जहाँ में कोई रिश्ता नहीं जिसे यह जोड़ता है ।

न जाने लोग उम्र भर क्यों इसको पालते हैं ।
यह तो दिलों को दिलों से तोड़ता है । ।
तू खुदी को छोड़ दे तू ख़ुदा हो जायेगा ।
तेरे जीने और मरने का हक अदा हो जायेगा ।
मस्त रहना सीख ले जो ख़ुदा के नाम में ।
जो न उतरेगा कभी ऐसा नशा हो जाएगा ।
अपने मन को साफ रखना जो भी मानव सीखले ।
देखते ही देखते वो क्या से क्या हो जायेगा ।
अगर तू ख़ुद को भूलकर ख़ुदा का हो जायेगा ।
देखते ही देखते तू देवता हो जायेगा । ।
तेरा शेवा गर किसी के काम आस के ।
तेरे जीने का हक अदा हो जायेगा । ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. शेर-ओ-शायरी
20. गीतांजलि
21. आर्यसमाज
22. ओ३म्
23. गायत्रीरहस्य
24. ज्ञानामृत
25. यज्ञ
26. संत
27. संतवाणी
28. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
29. Great Thoughts
30. General English (Part I to V)
    (For All Classes)